The true spirit of religion comforts, as well as composes the Soul.—Palmer.

"सच्चे धर्मिष्ठपनसे आत्माको दिलासा और शांति मीलती है"—पामर.

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः ॥

मनसे, वचनसे, और क्रियासे प्राणी मात्रका द्रोह नहीं करना, अनुग्रह करना और दान देना, उसको ही सनातन धर्म कहा जाता है.

अहमदाबाद—श्री "जगदीश्वर" प्रीन्टींग प्रेस.
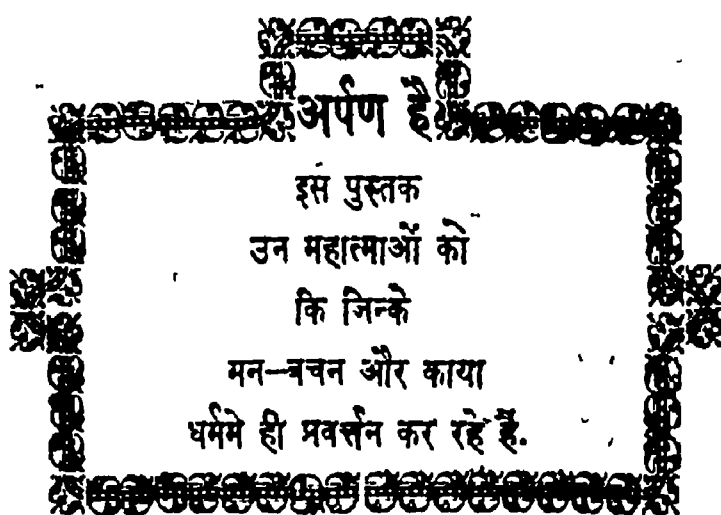
अर्पण है
इस पुस्तक
उन महात्माओं को
कि जिन्के
मन—वचन और काया
धर्ममे ही प्रवर्त्तन कर रहे है.

अनुक्रमणिका.

भूमिका.

आजकाल अंग्रेजोनी रीत जोईने आपणा देशमां पण एवो रीवाज दाखल थयो छे के, उत्तम परन्तु अप्रसिद्ध ग्रंथोनो संग्रह करी अन्य कोइ लेखक पासे तेनी प्रस्तावना अथवा भूमिका लखावी ते भूमिका साहित ग्रंथो बहार पाडवा ए मुजब. विद्याविलासी मुनीराज श्री अमोलख ऋषिजीए रचेलो एक ग्रंथ नाशिक जील्लामां आवेला इगतपुरी गामना एक श्रावक भाइ मूलचंदजी हजारीमलजीना वांचवामां आववाथी तेमणे विचार्यु के. जो आ पुस्तक कोइ सारा लेखकने सोंपी थोडाएक सुधारा वधारा करावी तथा भूमिका लखावी प्रगट कर्यो होय तो घणा जीवोने हितकारक थइ पडे. ए भाइए श्री 'स्था जं. ज्ञा प्र. मंडळ' ना बीजां पुस्तको जोएलां होवाथी स्वाभाविक रित्ये तेमनी दृष्टि ते तरफ गइ अने तेमणे ते हस्तलीखित प्रत उक्त मंडळने सोंपी मंडळे सिरस्ता मुजब ते प्रत मने मोकली आपी अने ए रीते आ पुस्तकनी भूमिका लखवानुं अने सुधारा–वधारा करवानु मारा शिर आव्युं.

आ पुस्तकमा ते विद्याविलासी मुनीराजे जैन धर्मनां कुल सिद्धांतो संक्षेपमां समाववा कोशीश करी छे. जूदां जूदां जैन सूत्रो. थोकडा अने ते उपरात अन्य धर्मना पुस्तकोनो कर्त्ताए छूटथी उपयोग कर्यो छे ते, चालाक वाचक आ पछीना पानां उपरथी जोइ शकशे.

जैन धर्ममां मुख्य १० फरमान (Ten Commandments) छे. ते एवां तो सादां छे के हरएक मनुष्य समजी शके, अने

एवां तो गंभीर छे के विद्वानो तेमांथी हरहमेश नूतन नूतन चमत्कार शोध्यां ज करे. ए फरमान आ लोकमां प्रत्यक्ष फळदाता नीवडे छे अने परलोकना फळनी 'गेरन्टी' आपे छे. उभय प्रकारे लाभकारक आ फरमानोथी, खुद श्रावक कोममां जन्मेला जनोनो ज मोटो भाग अद्यापि अज्ञ छे, तेनुं कारण मने तो एम जणाय छे के, 'अमुक फरमान पाळवाथी तमने मरण पछी सुख मळशे ए वाक्य उपर आ जमानो विश्वास राखतो नथी. आज तो दरेक दरखास्त कारण सहित अने प्रत्यक्ष लाभ बतावीने रजु करवामा आवे तो ज ते माननीय थइ पडे छे. आ पुस्तकना कर्त्ताए धर्मनां फरमानोनुं एवी ज रीते प्रतिपादन कर्युं जणाय छे

'दस फरमानो' समजाववा साथे, वच्चे वच्चे, घणीएक तत्वनी वावतो–शास्त्रीय वावतोने पण कर्त्ताए छेडी छे. एथी आ पुस्तक वांचनारने विविध उपयोगी विषयोनुं ज्ञान थाय तेम छे.

श्रीमद् शंकराचार्य कृत 'मोहमुद्गर' नामनुं पुस्तक आटलुं बधुं लोकप्रिय थइ पडयुं अने दरेक धर्मना मनुष्यो तेमांथी आनंद सहित सार लेवा लाग्या तेनुं कारण मने तो एम भासे छे के, ए पुस्तकनी रचना घणी सादी अने दलीलो अंतःकरणने विंधे एवी छे. दलीलो विनाना अने मात्र शास्त्रोना लूखा टाचणवाळा पुस्तकने विद्वानो पुस्तकना हिसाबमां गणता नथी अने सामान्य जनो तेने कशा काममां लइ शकता नथी 'मोहमुद्गर' नी माफक ज आ पुस्तक पण सरळ अने असरकारक दलीलोथी–व्यवहारोपयोगी सूचनाओथी–आत्मसंतापनी वातोओथी एवुं तो आकर्षणीय कर्युं छे के, दरेक खुबीओ चुंटी काढी तेनुं दिग्दर्शन करवामा अधीरा वाचकनो वखत खुटाडवा करता खुद तेलखाण पासे ज तेने जलदी लइ जवो ए वधारे उत्तम मानुं छुं.

परन्तु, वाचकने मुनी श्री पासे (तेमना लखाण पासे) रजु करता पहेलां एटलुं जणाववुं मारुं कर्त्तव्य छे के, मुनी श्रीए उपदे-

श्री

"स्थानकवासी जैन ज्ञान प्रसारक मंडल"

तेना हेतु अने हकीकत.

सनातन जैन धर्मावलंबीओमां, धर्मप्रसार माटे जोइती उदार लागणीओनी न्यूनता थवाथी अने निंदा तथा क्लेश ए ज जेने धर्मना स्थाने छे एवा केटलाक तंत्र स्वच्छा-वीओ तरफथी निरंतर हुमला थवाथी, पवित्र जैन धर्मनां—एक वखत आखी दुनियामां विजय पामेला जैन धर्मनां शुद्ध (भेळसेळ विनानां) तत्वो जाणवानुं काम मुश्केल थइ पड्युं. "जैनहितेच्छु" मासिक पत्रे ए संबंधी घणीवार सुज्ञोनुं लक्ष खेंचेलुं अने उपयोगी विषयो उपर इनामी निबंधो रचावी बहार पाडवानी भलामण श्रीमंतोने करेली. परिणामे, पोरबंदरना केटलाक उमंगी गृहस्थोए, एक मोटुं मंडल स्थपाय त्यां सुधी बेसी नहि रहेतां, पोताथी बने तेवो लूलो लंगडो उद्यम शरु करवा धार्युं : तेमणे पोरबंदरमां श्री "स्था जै. ज्ञा. प्र मंडल" स्थाप्युं.

आ मंडलनो हेतु, धर्म—नीति—व्यवहार आदि

संबंधी उपयोगी पुस्तको कोइए लख्यां होय ते ए-
कठां करीने अगर सारा लेखकोने इनाम आपी लखा-
वीने बहार पाडवानो छे. मंडल हजी बालवयमां छे,
तेमज तेणे श्रीमंतोनी स्हायता याची नथी; छतां
थोडा वखतमां ते नीचेनां उमदा पुस्तको बहार
पाडवा भाग्यशाली थयुं छेः—

(१) हितशिक्षा. (३) सम्यक्त्व.
(२) बारव्रत. (४) प्रातःस्मरण.
(५) धर्मतत्वसंग्रह.

तेमानो 'हितशिक्षा' नी तो ५००० प्रतो मात्र
एक मासमां ज खपी गइ हती. गायकवाडी केळवणी
खाताना उपरी अधिकारी साहेबे ते पुस्तक पसार
कर्युं छे. अने बीजी आवृत्तिनी ६००० प्रतनी मागणी
थवाथी छापवानुं काम ताकीदमां ज शरु थवानुं हतुं;
परन्तु सरकारी केळवणी खाताना डीरेक्टर साहेबनी
मंजुरीनो उत्तर मळतां सूधी राह जोवी पडी छे. आ
पुस्तक गुजरातीमां छे, पण जो कोइ गृहस्थ खर्च
उपाडी ले अने हिंदी तरजुमो करी बहार पाडे तो
घणा जीवोने लाभ थाय.

'बारव्रत' नी ६००० प्रत हमणां ज छापी छे.
'सम्यक्त्व' नी ४००० प्रत तथा प्रातःस्मरणनी ३०००
छापी छे.आ 'धर्मतत्वसंग्रह'नी १५०० प्रत छापी छे.

शनी भाषा मिश्र राखी छे; एम समजीने के गुजराती, मारवाडी, हिंदी एम भिन्न भिन्न भाषा बोलनारा मनुष्यो पण आ पुस्तक सहेलाइथी समजी शके भाषाशास्त्रीओए, एटला माटे, भाषा संबधी बारीकाइ बतावी टीका करवानो श्रम नहि उठावतां एटलो श्रम पुस्तकनो सार ग्रहवामा लेवो, एवी मारी प्रार्थना छे. में पण बनता सुधी तेमनो भाषामा विशेष फेरफार करवो उचीत धार्यो नथी

अन्तमा, कह्या सिवाय चालतुं नथी के, इगतपुरीना सुश्रावक भाइ मूलचंदजी हजारीमलजी टाटीयाए आवु उमदा पुस्तक परोपकारार्थे—मफत वहेंचवा माटे—प्रसिद्ध करवानुं काम उपाडयुं ते खरेखर प्रशंशनीय छे मने खात्री छे के, आ पुस्तक सर्व धर्मना लोकोने माननीय थइ पडशे अने घणा जीवोने उपकारी थइ पडशे

लग्न—मृत्यु आदि अनेक प्रसंगे जे मोटां खर्च करवामां आवे छे ते खर्चोमाथी अमुक हिस्सो बचावी आवा शुभ कार्य करवाथी बेवडो लाभ थाय छे; एक तो जेटली रकम ते आरंभसमारंभना काममाथी बचावी तेटला पापमांथी बच्या; अने वळी अनेक जीवोने सद्ज्ञानप्राप्तिना साधन रूप थवाथी पोताना ज्ञानावरणीय कर्म नाश पामे छे.

आ पुस्तक जे जे सज्जनोना हाथमां आवे तेमणे अथ इति लक्षपूर्वक वांचवा, ते उपर विचार करवा अने तेनो तोल करतां व्याजबी जणाय तो ते प्रमाणे वर्त्तन करवा मारी प्रार्थना छे. वाचक वर्ग पैकी जेओ श्रीमंत होय तेओ प्रत्ये हुं आग्रहपूर्वक विनति करीश के, जो आ पुस्तकथी तेमने संतोष मळे तो आवा बीजां पुस्तको एकठां करी अगर रचावी, छपावी, मफत वहेंचवां. एथी पोताना उपर थयेला उपकारनो बदलो वाळ्यो गणाशे

“जैनहितेच्छु” ऑफिस
अमदावाद.

वाडीलाल मोतीलाल शाह.
जॉइन्ट एडिटर—“जैनहितेच्छु”

ग्रंथकर्त्तानुं संक्षिप्त जीवन वृत्तांत.

एक सद्वर्त्तनवाळा पुरुष के जेनामां वळी लेखक तरीके वहार पडी सद्वर्त्तननो प्रसार करवानी शक्ति होय तेवा नरनुं जीवनचरित्र लखवुं जरुरनुं छे घणा लेखको पोतानी वडाइ माटे पोताना हाथे पोतानु 'जीवन' लखे छे; ते योग्य नथी पण मात्र एवा ज नरना जीवनचरित्रनी जरुर छे के जेमणे सामान्य प्रजावर्ग करतां कांइक नूतन कार्य—कांइक विशेष कर्युं होय.

मुनी श्री अमोलख ऋषिजीने—आ ग्रंथना कर्त्ताने हुं कांइ एक महापंडीत अगर अवतार तरीके जाहेरमां मुकवा मागतो नथी. देश-कालादिए जन्म आपेली सर्व अपूर्णताओ छतां तेमनामां जे विद्याप्राप्ति अने विद्याप्रसारनी तीव्र अभिलाषा छे ते गुण ज मने तेमनुं चारित्र लखवा प्रेरे छे. मुनीओमां बहुधा चिंता ओछी थवाथी आलस्यनो गुण जन्म पामवा संभव रहे छे अने एवुं घणां द्रष्टांतोमां बन्युं पण छे परन्तु आ मुनी वाळवयथी ज विद्याना शोखमां पडया तेथी ज आ पुस्तक रचायुं छे.

'माळव' देशना 'आसटा' गामना रहीश शेठ किस्तुरचंदजी कासटीआना पुत्र केवलचंदजीने तेमनी बीजी स्त्रीथी, जे पुत्र थयो (भाद्रपद, सम्वत् १९३३) तेनुं नाम 'अमोलख' पाडयुं. आ वखते किस्तुरचंदजी कार्यवसात् 'भोपाळ'ना रहीश थया हता. बाळपणामां माताना मृत्युथी, बालरक्षणार्थे पिताने फरी परणवा संबंधीओए सलाह आपी तदनुसार तेओ विवाह वास्ते मारवाड जवा नीकळया रस्तामां रतलाम शहेरमां पूज्य श्री उदयसागरजी महाराजनां दर्शन करवा गया. त्यां सुश्रावक किस्तुरचंदजी के जेमणे २८ वरसनी उमरे सजोडे ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर्युं हतुं

अने जेमने शास्त्रनो घणो सारो अभ्यास हतो तेमनी मुलाकात थइ. वातचीत दरम्यान पोतानी मुसाफरीनो हेतु कहेवाइ गयो. सन्मोत्रे प्रश्न कर्योः "भाइ रे ! विषनो प्यालो सहज-आपोआप ढळी गयो तेने पुनः भरवाना उमंगो केम थाओ छो?"

ए वाक्य केवळचंदजीने छातीए वाग्युं. तेमणे ते ज वखते ब्रह्मचर्यव्रत लीधुं अने घेर आवीने धर्म-ध्यानमां चित्त चोडयुं

केवलचंदजीनो जन्म तो तपगच्छमां थयेलो; परन्तु पाछळथी सत्संगथी सनातन जैनमार्गमां भळीने तेज पथमां पूज्य श्री कहानजी ऋषिजीना संप्रदायमां दीक्षा लीधी (चैत्र, संवत् १०४३) दीक्षा लइ पूज्यश्री खूबा रिखजीना शिष्य थया त्यारथी ज तप उपर विशेप ध्यान आपवा मांडयुं १ थी १२१ सुधी तप पण तेमणे कर्या छे जैपुर तावाना अलायगामना मालीक विजयसिंहजीने मद्य-मांस अने मृगयाथी बचावनार आ ज पुरुष. मुनीश्री केवल ऋषिजीना इतिहासनो आटलो भाग मुनीश्री अमोलख ऋषिना इतिहास साथे संबंध धरावतो होवाथी आपवो पडयो. हवे एवुं वन्युं के, उक्त मुनी संवत् १९४४ मां कविवर पूज्यश्री तिलोक ऋपिजीना शिष्य श्री रत्नऋषिजी साथे 'इच्छावर' पधार्या केवलऋषिजीना भूतकाळना पुत्र अने भविष्यकाळना शिष्य अमोलख, के जे हमणां १२ वरसना थया हता ते, इच्छावरथी बे गाउ दूर 'खेडीगांव' मा पोताना मोसाळमां रहेता हता. ते पोताना पिताना दर्शनार्थे मामानी साथे इच्छावर आव्या वैरागीनी दृष्टिए पुत्रने पण वैरागी बनाव्यो बाळ वैरागी मन एटलुं तो आत्मरागी थइ गयुं के तरतज संयम लीधो (फाल्गुन, १९४४)

आ पछी त्रण वरसे मुनी केवलऋषिजीए एकलविहारीपणुं स्विकार्युं तेथी श्री अमोलख ऋपिजीए, मुनीश्री रत्नऋषिजी दूर देश होवाना सबबथी, श्री भेरुऋपिजीनी साथे बे वरस सूधी विहार कर्यो अने त्यार पछी श्री रत्नऋषिजी साथे विहार कर्यो. आ पहेलां तेओए केटलोक वखत श्री चेना ऋषिजीनी

साथे रह्यो तेमनी सेवाभक्ति करी हती. रत्नऋषिजीए तेमने अच्छी रीते शास्त्राभ्यास कराव्यो. ए अभ्यासना प्रतापे तेमणे घणाएकने मांसाहारथी—घणाएकने बीजां व्यसनोथी अने घणाएकने कुधर्मथी बचाव्या छे तेओ दक्षिण, गुजरात, मालव, वागड, मेवाड, सोंधवाड आदि घणे स्थळे फर्या छे पोताना शिष्य सहित गइ साल तेमणे मुम्बापुरी (मुंबइ) मां चातुर्मास कर्युं हतुं, जे वखते फुरसदनो लाभ लइ केटलांक उपदेशी काव्यो तथा आ पुस्तकनो केटलोक भाग तैयार कर्यो हतो

मुनीनी उमर हाल मात्र २७ वरसनी छे तेओ भाग्ये ज कोइ संसारी साथे खटपटमा पडे छे विद्याभ्यास अने ग्रंथलेखन ए तेमना वखत रुपी खजानानो व्यय करवानो रस्तो छे मारा मासिकपत्रमां जे सूचना घणा वखतथी हु छापतो आव्यो छुं ते अत्रे पुनः जणावीश के, आपणा मुनीराजो शिष्यो करवाना लोभने बदले अभ्यास करवाना लोभना खपी थाय, अने संसारीओनी लपछपमा पडवाने बदले ज्ञानी पुरुषो अने एवानां रचेलां पुस्तकोनी लपछपमां पडवाना उमंगी थाय तो आ पवित्र धर्म प्रकाशमान थाय देश अने धर्मनी उन्नति करनार तेमज देश अने धर्मनी पायमाली करनार 'शिक्षक वर्ग' ज छे, के जेमां सांसारीक ज्ञान आपनार महेताजीओ तथा धर्मज्ञान आपनार साधुओनो समावेश थाय छे. अज्ञानी, आळसु, खटपटीआ, रळवुं मुश्केल थवाथी निरांतनो आ 'धंधो' लइ बेठेलाओ मात्र हरेक रित्ये धर्म तथा देशना शत्रु ज नीवडे छे संसारीओ करतां साधु वर्गने बेवडी फरज अदा करवानी छे एक तो पोताना कल्याणनी अने बीजी जगतना कल्याणनी. एवी बेवडी जंजाळवाळा मगजमां बीजी कोइ जंजाळ अवकाश ज केम पामी शके? जेना मगजमां एवो अवकाश मळतो होय तेने बेहेतर छे के घरबारी रहेवुं, पण घर वाळीने तीर्थने पण न वाळवु

वाडीलाल मोतीलाल शाह.

मंडले 'सनातन जैन धर्मनो इतिहास' रचवो शरु कर्यो छे. दरेक मुनी तथा श्रावकने मंडल तरफथी सविनय विनंति छे के, आ विषय साथे संबंध धरावनारी जे कांइ हकीकत पोतानी पासे होय ते मंडल उपर मोकली आपवा कृपा करवी.

४था. जैन डीरेक्टरी अथवा वस्तीपत्रक पण मंडल तरफथी करवामां आवे छे. जे जे गामोना समाचार लखाइ आव्या छे ते नोंधी राख्या छे. दरेक प्रांत—दरेक गामना श्री संघे कोरां फारम मगावी लेवां अने तेमां हकीकत लखी मोकलवा महेरबानी करवी.

मूर्तिपूजकोना रचेला रास बंध करी तेनी जगाए आपणा पोतीका विद्वानोना रचेला रास दाखल करवा, ए आ मंडले धारेलां खास कामोमांनुं एक काम छे. ते माटे सर्व मुनीराजो तथा श्रावकोने मंडल विनवे छे के, जूना या नवीन रास, कथा, ढाळ आदि जेमनी पासे होय तेमणे मंडल उपर मोकली आपवा; जेथी दोष न लागे एवी युक्तिथी छपाववानी सगवड करवामां आवशे.

तेमज सारा-नरसा प्रसंगे दरेक जैन भाइए आ मंडलने याद करी तेने यथाशक्ति भेट मोकली आपवा नम्र विनंति छे. टाणुं करनारने ५०० के ५००० रुपिया मळे तो ५०-१०० रुपिया आ मंडलने भेट आपवा

ए कांइ मुश्केल नथी. एथी घणा जीवोनुं हित थशे, धर्म दीपशे अने पोतानां ज्ञानावरणीय कर्म ओछां थशे. जे गृहस्थनी भेटमांथी पुस्तक छपाशे ते गृहस्थनुं नाम ते पुस्तकमां छापवामां आवशे.

पुस्तको छपाववामां आ मंडल घणी ज काळजीथी काम ले छे. लखवा-छापवानुं काम अमदावादनी "जैन हितेच्छु" ऑफिसना मेनेजरने हस्तक छे अने हिसाब संबंधी सर्व कामकाज पोरबंदरमां मी. मनमोहनदास कपुरचंद गोशाळीआ हस्तक छे; तेओ मंडळना मेम्बरोनी अनुमतिथी कामकाज चलावे छे. पत्रव्यवहार अमदावाद अथवा पोरबदर हरकोइ शीरनामे थइ शके छे.

वा. मो. शाह.

॥ ॐ ॥ असिआउसायनमः ॥

श्री

धर्मतत्वसंग्रह.

प्रवेशिका.

सिद्धाणं नमो किच्चा संजयाणं च भावओ।
संति संति करे लोए पत्तोगइ मणुत्तर ॥ १ ॥

श्री उत्तराध्ययन सूत्र

च्छित कार्यसिद्धि करनेके लिये प्रथम इष्टदेवको नमस्कार करता हूं. 'सिद्धाणं' अर्थात जीनोने सर्वकार्यसिद्धि कीयो है उन सिद्ध* भगवानको नमस्कार हो!

'संजया' अर्थात् 'संजति' (संयति) सो आचार्य, उपाध्याय और साधुजी तीन ही पदको मेरा नमस्कार हो! सर्व लोकमें शान्ति करनेवाला श्री शान्तिनाथ प्रभुको मेरा त्रिकरण शुद्ध भावपूर्वक नमस्कार हो!

---

* सिद्ध २ प्रकारके हैं:-(१) 'भापक' सिद्ध, और (२) 'अभापक' सिद्ध अभापक सिद्ध सो निराकार प्रभु; और भापक सिद्ध सो अरिहत भगवान, की जो भवान्तरमें सिद्ध होने वाले हैं

यह सिद्ध-संयतिका शरण ग्रहण करके नीज आत्माका और सर्व जनोका कल्याणार्थे, दश प्रकारका जो धर्म प्रभुजीने फरमाया हे इसका कथन स्वल्प बुद्धि अनुसार करता हूं.

धर्मके १० प्रकार.

धर्म १० प्रकारसें होता है, जिसकु १० 'पवित्र फरमान' अर्थात् हुक्म भी कहते है.

गाथा.

खंती[१] मुत्तीय[२] अजव[३] मद्दव[४] लाघव[५] सच्चे[६] ।
संजम[७] तवे[८] चेइय[९] बंभचेरवासीयं[१०] ॥ १ ॥

अर्थः-(१) खंति=क्षमावान; (२) मुत्ती=निर्लोभता; (३) अज्जव=ऋजुता-सरलता; (४) मद्दव=मृदुता-नम्रता-निरभिमानी होना; (५) लाघव=लघुत्व-हलकापणा धारण करना; (६) सच्चे=सत्यता; (७) संजम=संयम; (८) तवे=तप; (९) चेइय=ज्ञानाभ्यास; और (१०) बंभ=ब्रह्मचर्य.

अब प्रत्येक 'फरमान' पर विस्तारसें बयान किया जायगा.

प्रकरण १.

क्षमा.

कोह विजएणं भंते जीवे किं जणयइ ।
कोह विजयणं खंत्ति जणयइ ॥

श्री उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन २९

अर्थः-शिष्य पूछता हैं, "हे भगवन्! क्रोधका विजय करनेसें कोन गुनकी प्राप्ति होती है?" गुरुजीने उत्तर दिया की, "क्रोधकु जीतनेसें 'खंती' अर्थात् क्षमा रूप गुनकी प्राप्ति होती है."

क्रोधका स्वरूप.

श्री 'उत्तराध्ययन' सूत्र (अध्ययन २३) में कहा है कि-"संपज्जलीया घोरा, अग्गी चिठइ गोयमा." अर्थात् "हे गौतम! अति जाज्वल्यमान, अति ही भयंकर अग्नि हृदयमें रही है."

सुज्ञ जनोको विचारना चाहिये की, यह हृदयकी भयंकर अग्नि कोन? यह अग्नि क्रोधाग्नि है. क्रोधाग्नि जब

हृदयमें प्रगट होती है तब संतोष, संयम, तप आदि सर्व गुनको जलाके भस्म कर देती है. कभी बहुत ज्यादे प्रजले तो समकित रत्नसुधाको भी जला के चेतनपे मिथ्यात्वरूप काला रंग लगा देती है.

जैसे अंध आदमी देख नहीं सकता है ऐसे क्रोधी मनुष्य भी अपना और पराया भला-बूरा कुच्छ नहीं देख सकता है.

क्रोधकु चण्डाल भी कहा जाता है. जैसे चण्डालके हृदयमें दया नही होती है ऐसे ही क्रोधीके हृदयमेंसे दया नष्ट हो जाती है. जब क्रोधरूप चण्डाल मनुष्यके हृदयमें प्रवेश करते है तब पिता, माता, बन्धु, भगिनी, स्त्री, पति, पुत्र, पुत्री, स्वजन, मीत्र, सेवक, स्वामी, पशु कीसीकी भी पीछान नहीं रहती है. कभी तो क्रोधी मनुष्य जहर (विष) खाके, शस्त्रसें, अग्निमें जलके इत्यादिक प्रयोगसें स्वतः आत्महिंसा भी करतेहै.

राक्षसकी उपमा भी क्रोधकु दी जाती है. जब क्रोधरूप राक्षस मनुष्यमें प्रवेश करता है तब वह मनुष्य उल्लु (मूर्ख) की तराह बकता फीरता है, किसीकु मारता है, और निर्लज हो जाता है. क्रोधी मनुष्य मतवाले—भंग गांजा पीनेवाले मनुष्यकी माफीक बेशुद्ध होकर अपने जीवसें भी प्यारी चीजको तोड-फोड-जला देता है और फीर पश्चात्ताप करताहै.

क्रोध है सो जहरसें भी जास्ती खराब है. क्यों-की, जहर (विष) खानेसें तो एक ही दफा मृत्यु होती है; परन्तु क्रोधरूपी विषके सेवनसें तो अनंत जन्म–मरण करने पडते हैं इस लिये क्रोध महा दुःखदायी कहा जाता है और इस लिये ही क्रोधका दुसरा नाम 'गूसा' (गू=विष्टा+सा=सारीखा) कहा जाता है.

क्रोधसें बहुत ही दुर्गुण उत्पन्न होते हैं. अन्त-लमें क्रोधी मनुष्य कृतघ्नी होता है; अर्थात् दुसरेके किये हुए अनंत उपकारको भूलके उसका शत्रु बन जाता है. इस लिये क्रोधीका कोइ मीत्र नही हो स-कता है. श्री 'दशविकालीक' सूत्रके अष्टम अध्ययनमें कहा है की "कोहं पीये पणासेइ." अर्थात् "क्रो-धसें प्रीतिका नाश होता है."

जमी हुइ बातको, क्षणमात्रमें क्रोधी मनुष्य विगाड देता है. अति ही प्रचंड क्रोधाग्निसे जला हुआ मनुष्य कुरूप और सत्वहीन बन जाता है.

एक क्रोध रूप अवगुनसें सर्व सद्गुण नष्ट हो जाते है; सत्कार नहीं मीलता है; मन स्थिर नही रह सकता है; और बुद्धि भी मंद हो जाती है. एक दुर्गुणसें कीतने नुकसान होते हैं!

क्रोध-कटककी संख्या!

क्रोधके भांगे इतने हैं की सुनते ही मनुष्य डर पावे! क्रोधके थोडे वहुत १३०० (तेरासो) भांगे होते हैं!!

(१) अनन्तानुवन्धी क्रोधः-जीस्का अन्त नहीं एसा वंधन करनेवाला क्रोध. जैसे पर्वतकी राइ (तराड-त्रूट) पडी हुइ पीछे कभी मीले नहीं; ऐसे अनन्तानुबन्धी क्रोधी मनुष्य जीस्से टंटा करे उस्से जावजीव पर्यंत बोले नहीं और मनसे रोष (द्वेष) छोडे नहीं ऐसे मनुष्यको जहां तक कषाय रहे तहां तक सम्यकत्वकी प्राप्ति हो न सके; और इस कसायमें मर जाय तो नर्कगामी होता है.

(२) अप्रत्याख्यानी क्रोधः—जैसे पृथ्वीमें पडी हुइ राइ (तराड-त्रूट) पानी वरसनेसे मील जाती है, ऐसे ही अप्रत्याख्यानी क्रोधवाला मनुष्य जीस्सें लडाइ करे उस्से १२ मास तक वोले नही; फीर अति संख्त उपदेश लगे नव नम जाय अर्थात् संवत्सरीके दीन 'खमतखामणा' कर ले इस कसायमें मरनेवाला मनुष्य तिर्यंचगामी होता है

(३) प्रत्याख्यानी क्रोधः-जैसे वालू (रेती) में पडी हुइ (तराड-त्रूट) हवा चलनेसे मील जाती है;

ऐसे ही प्रत्याख्यानी क्रोधवाला मनुष्य जीस्सें लडाइ करे उस्सें चार मास तक रोष रखे, फिर उपदेश सुनके चौमासीको 'खमतखामणा' कर ले इस्को साधूपना उदय नही आता है. इस कषायवाला मनुष्य मरनेसें देवगतिमें जाता है.

(४) संजलका क्रोधः—जैसे समुद्रजलकी वेल [जरतो] आनेसें अंतमें लकीर [चिन्ह] पड जाती है, फिर १५ रोजमें दुसरी वखत पानी आनेसें मीट जाती है; ऐसे ही 'संजलका' क्रोध वाला मनुष्य जीस्सें लडाइ करे उस्से १५ रोजमें अवश्य 'खमतखामणा' करे ले. उसको केवलज्ञान नहीं उपजे ऐसा मनुष्यकु देवगति प्राप्त होती है.

(५) 'में क्रोध करता हूं सो ठीक नही है' ऐसा जान कर भी जो क्रोध करे

(६) क्रोधका फलकी अज्ञानतासें, जो क्रोध करे.

(७) क्रोधका फल कुछ जाने, कुछ न जाने ऐसी स्थितिमें जो क्रोध करे.

(८) लडनेका अर्थ तो समझे नहीं; परन्तु दुसरे लोक बोले ऐसा आप भी बोलके क्रोध करे.

(९) आपके लिये क्रोध करे [जैसे की, अमुक मनुष्यने मेरा नुकसान कीया है.]

(१०) परके लिये क्रोध करे [जैसे की, अमुक मनुष्यने मेरा स्वजनका नुकसान किया है.]

(११) आप और पर : दोनुके लिये क्रोध करे.

(१२) विना कारन क्रोध करे. [स्वभावसे ही क्रोधी होवे.]

(१३) उपयोग सहित क्रोध करे.

(१४) उपयोग रहित क्रोध करे [देवादिकके योगसें]

(१५) कुछ उपयोग सहित और कुछ उपयोग रहित (भ्रमित चित्तसें) क्रोध करे

(१६) 'ओघ संज्ञा'सें क्रोध करे [अर्थात् देखादेखी क्रोध करे]

इसी तराह १६ प्रकार हुए; अब २४ दंडक* और पचीसमा समुच्चय जोव; यह २५ ठीकाने १६ प्रकारके क्रोध लगे हैं, इस लिये २५×१६=४०० प्रकार हुए.

---

* (१) सात नर्कका १ दडक

(२-११) दस भवनपतिके १० दडक

(१२-१६) पंच स्थावरके ५ दडक

(१७-१९) तीन विकलेन्द्रियके ३ दंडक

(२०) तिर्यंच पचेन्द्रियका १ दंडक

(२१—२४) मनुष्य-वाणव्यंतर—ज्योतिषी-विमानीक चारके चार दडक.

और——

यह जीव क्रोधके पुद्गलको ६ प्रकारसें बांधता और खपाता है:--(१) 'चूर्णे' अर्थात् क्रोधके दलीयेंको इकठे करे; (२) 'अवचूणे' अर्थात् इकठे कीये हुवे दलीयेंको जमावे; (३) 'बांधे' अर्थात् जमे हुवे दलीयेंका बंध करे; (४) 'वेदे' अर्थात् बांधे हुए पुद्गलको आत्मप्रदेश और कर्मप्रदेश कर वेदे (भोगवे); (५) 'उदेरे' अर्थात् ज्यों ज्यों कर्म वेदता है त्यों त्यों उस्की उदेरणा हो रही है; (६) 'निर्जरे' अर्थात् कीतनेक भव्य प्राणी तपसें और पश्चातापसें क्रोधके दलीयेंको निर्झरे (खपा देवे)

यह ६ बोल गतकाल आश्री, और ६ वर्त्तमान आश्रो, और ६ भविष्यकाल आश्री: सब मीलके १८ भेद हुए. यह १८ नीजके आश्री, १८ परके आश्री: मीलके ३६ भेद हुए. यह ३६ भेद, २४ दंडकपे और पच्चीसमे समुच्चय जीवपे लगे हैं; इस लिये ३६×२५ =९०० भेद हुए.

यह ९०० और पहिलेके ४०० मीलके कुल१३०० भेद क्रोधके हुए. अब विचारीए, जो राजाकी पास १३०० सुभट हैं वह राजाकी प्रबलता कीतनी हो सकती ?

क्रोध-कटकका संहार करनेकी युक्ति.

ऐसा जब्बर क्रोध कटक है तो भी युक्तिसें इस्का भी संहार हो सकता है. यह युक्तिका नाम 'क्षमा' है. "उवसमे हणे कोहं" अर्थात् उपसम [क्षमा]सें क्रोधका विनास करना

भगवानने सत्य फरमाया है की---" खंतीएणं परिसहं जणयइ" अर्थात् "क्षमावन्त होनेसे परिसह सहन हो सकते है."

पृथ्वीको कोइ खोदते हैं, कोइ इसपे मलमूत्र डालते हैं, तो भी पृथ्वी सवकु माता तुल्य आश्रय देती है; ऐसा क्षमावान—उदारचित्त होना चाहिये.

ऐसा क्षमावान होनेके लिये सिधा विचारनेका स्वभाव आवश्यकीय है. प्रत्येक शब्द [भला किंवा बूरा] और प्रत्येक वनाव [भला किंवा बूरा] का ऐसा सीधा अर्थ करना चाहिये की जोस्से तीलमात्र भी खेद न होवे. मैं अत्र कीतनीक चावी-कूंची [Keys] बताता हुं.

समझो की आपकु कीसीने गाली दी; उस वख्त आपकों एसा विचारना चाहियेः--

[१] " मैं इस्का अपराध कीया, उस लिये इ-

---

* 'दश वैकालिक' सूत्र, अध्ययन ८

स्का अपराधी हूं. अब यह मेरेकों नीच, चंडाल, ठग आदि कहता है, इस्में इस्का कुछ अपराध नहीं है; मुझे शिक्षा देकर शुद्ध करता है; इस लिये मेरा उपकारी है." और जो मंदकषायी जीव होवे तो शीघ्रमेव गाली देनेवालेके पास जाकर नम्र होकर कहे की "भाइजी! मेरा अपराध क्षमा करो; इत्यादि";

[२] "मैं इस्का अपराध नहीं कीया है तो भी यह मुझे गाली देता है: एसा अज्ञानी जीव है. अज्ञानी जीवपे क्रोध करना मुझे उचित नही; परन्तु अज्ञानोकी तो दया करनी चाहिये–इस्कु भूलसें बचाना चाहिये"

एसा विचारके उसकी पास जाकर नम्र बचनसें बोलनाको, "भाइजी! मुजसें आपका कुछ अपराध हुआ होगा तो क्षमा करनाजी." इत्यादि कहके शांत करना. अंकुससें बडा हाथी वश हो जाता है, और जल [पानी]सें अग्नि शांत होती हे, तो फिर नम्रतासें---दीनतासें शत्रु शांत होकर वश हो जावे इस्में क्या आश्चर्य है? जैसे मनुष्य हस्तीकु पकडते हैं और पीछे इस्कु मरजी मुजब पढाते हैं ऐसे ही अव्वल तो शत्रुकु नम्रतासें वश करना और पीछे इसका दोष बताके शुद्ध उपदेश करना.

[३] "अमुक मनुष्य मुझे गाली देता है इससें मुझे कुछ नुकसान नही है; बोलनेवालाका मुख थक जायगा. उत्तर* दे कर मेरा मुखकु निरर्थक श्रम देनेकी क्या जरुर? कुत्ताका स्वभाव है की काटना परन्तु क्या मनुष्यका यह कर्त्तव्य है की वैरके लिये कुत्ताकु काटना?"

[४] "अमुक मनुष्य मुझे 'चंडाल--दुष्ट--मूर्ख' आदि शब्द सूनाता है, यह मुझे पूर्व भवका स्मरण कराता है. क्यों की में पूर्व भवमें चाण्डालके कृत्य, मूर्खके कृत्य, दुष्टके कृत्य वहुत ही कीये हैं. यह तो मेरा उपकारी है की मुझे याद कराते है की 'रे मूर्ख! अनेक वख्त एसा जन्म--मरनके दुःख सहन करनेसे भी बुद्धि नहीं मीली?'

ऐसी सीधी लेना. समतामें बडा भारी चमत्कार है. एक कविने कहा है कीः---

"सीधी साही मोक्ष दे, उलटी दुर्गत देख;
"अक्षर तीनकु ओलखो, दोय लघु गुरु एक."

---

* दीधा गाली एक है, पलट्या गाली अनेक;
जो गाली देवे नहीं, तो रहे एककी एक
कोइ अपनेको गाली दे, और अपने इस्को सहन कर ली, तो वो एक ही गाली वन रहेती है; परन्तु उसने एक दी, दुसरेने दो दी; ऐसी अनेक गाली हो जाती है.

दो लघु और एक गुरु अक्षरवाला शब्द 'समता' है; इस्कु बराबर--सीधा पढनेसें ' समता ' हुइ, की जो मुक्तिदाता हैं; और इन दो अक्षरोंको उलटा पढनेसें ' तामस ' शब्द हुआ, जीस्सें दुर्गति होती है.

[५] "जो ज्ञानदृष्टिसें बिचार करुं तो मेरा जैसा बुरा (खराब) कोइ नही है. जो आदमी मुझे बुरा कहता है वह बुरा नहीं है परन्तु बूरा (सक्कर) जैसा है; क्युं को मुझे पूर्वभवका स्मरण कराता है."

"बुरा बुरा सबकों कहे, बुरा न दीसे कोय;
"जो घट शोधू आपको, मो सम बुरा न कोय.
"बुरा बुरा सहु तुज करे, तूं भला कर मान;
"बूरा मीठा होत है, सबी बणे पकवान."

[६] कीतनीक गालीओंका भावार्थ विचारनेसें आशिर्वाद जैसा मालूम होता है. दृष्टांतः---(१) ' तेरा खोज जावे ' ऐसी कोइ गाली देवे तो विचारना की, मेरा खोज तो जब मैं मोक्ष जाउंगा तब जायगा. (२) 'कर्महीन !' 'अकर्मी!' ऐसी कोइ गाली देवे तो विचारना की यह मुझे सिद्धपद देता है, क्युं की, जीस्के कर्म क्षय होते है वह ही कर्महीन किंवा अकर्मी किंवा भगवान बनता है. (३) यदि कोइ

'साले' कहे तो बिचारना की, उस्की स्त्री अपनी भगिनी हुइ; पवित्र पुरुषोंको तो पर स्त्रीसें भगिनी भाव ही है!

[७] "जैसी जिस्के पास वस्तू है, वैसी वो देवेगा. बिचारा जास्ती कहांसें लावे? हलवाइकी दुकानपर मोठाइ मीलती है; और चमारके पास जूते मीलते हैं."

[८] "जो शब्दकु में गाली मानता हूं वह कायकुं ह्रदयमें ग्रहण करना चाहिये? बूरी चीजकु सब लोक छोड देते हैं, ग्रहण करते नहीं है."

[९] ज्ञानी पुरुष दुसरेके दुर्वचन सूनके यों बिचारे की, "यह जो कहता है वो दुर्गुण मेरी आत्मामें है या नहीं?" यदी वो दुर्गुण अपनी आत्मामें होवे तो बिचारे की, "अहो! डाक्टरकी माफीक इसनें मेरी नाडी प्रमुख बिन देखें मेरी आत्माका दर्द मुझे बता दीया, अब वो दर्दकु दूर करनेका उपाय लेना चाहिये."यदि वो दुर्गुण अपनी आत्मामें न होवे तो बिचारना की, "मेरी आत्मामें तो वह दुर्गुण नहीं है तो क्या इस्का कहनेसे आ जायगा? क्या रत्नको काच कहनेसें काच हो जाता है? अब में जो इसपें क्रोध करुं तो मेरा जैसा अज्ञानी दुसरा कोन? ज्ञानी

ग्रौर मूर्खमें क्या ज्नेद ?

[१०] " बचन सहन करना इतना ज्नी परिसह स्वतंत्रपनसें नहीं हो सकता है, तो नर्कतिर्यंचादिमें मारताड कैसी सहन होगी?"

[११] कोइ वख्त कोइ मनुष्य ग्रति द्वेषज्नाव करके मुष्टी—लात—लकडी इत्यादिसें प्रहार करे तो ज्ञानी पुरुष ऐसा बिचार करे की, "इस्सें मेरे कुछ पूर्वजन्मका वैर संबंध होगा. वह ऋण (देवा) मेंसे मुक्त होना मुझे लाजीम है. " श्रीउत्तराध्ययन सूत्र (ग्रध्यन ४) में कहा है की ' कडा न कम्माग ज्नोख अथ्थो' अर्थात् 'कीये हुवे कर्म ज्नोगव्या विना बूटका नहीं होता.' इस वख्त में पूर्वज्नवका वैरका ऋण (देवा) चूकाने के लिये समर्थ हूं, तो खुशीकी साथ चूकाना चाहिये. इसमें क्रोध करके नवीन ऋण (देवा) नहीं करना चाहिये."

दृष्टांतः--एक कृषीकारको शाहुकारके सो रूपैये देणे हे. शाहुकार मांगणेको आया. अब जो कृषीकार उन शाहुकारका आदरसत्कार करके कहे की, 'शेठजी ! मैं गरीब हूं; मेरी पास १०० रूपैये तो नहीं हैं परन्तु ७५ हैं. इतने ले कर मेरे सरीखे गरीबपें कृपा करके पावती खत दो." ऐसा सुनके शाहुकार

प्रसन्न होता है और ४५ रुपैये कमती लेकर फारक-ती दे देता है. परन्तु जो करजदार करडाइ करके कहे की, "जा, नहीं देता. तेरेसें बने सो कर ले!" तव वह शाहुकार अर्ज-फिरीयादी कर व्याज सहित रुपैये लेता है. इस लिये जो देवा है सो नम्रतासें चूकाना चाहिये.

[१२] ज्ञानी पुरुष ऐसा वीचार करे की, "यह जो मारता है सो मुझें नहीं मारता है. यह शरीरकु मारता है. और पुद्गलमय पींड (शरीर)का तो कभी न कभी बिनाश होनेवाला ही है. मुझे मारनेकी और तारनेकी शक्ति मेरे सिवाय कीसीकी नहीं है; क्यों को मे तो अजर–अमर–अखंड–अविनाशी हूं."

[१३] ज्ञानी पुरुष ऐसा वीचार करे की "मैंने अनंत पुन्योदयसें जो जैन धर्म पाया है और जैनागम (शास्त्र)का सार जो समता (क्षमा) रुप धर्म धारन कीया है वह धर्म पूरा साधा कि नहीं उस्की पूर्ण परीक्षाका यह वख्त आ पहुंचा है. यह मारनेवाला, परीक्षक है. सो हे प्राणी! अव तूं तेरी अच्छी तरहसें परीक्षा दे; पीछा हटे मत. यदि ऐसा परीक्षाप्रसंग नही आता तो क्या खात्री होती की भगवानका पहीला फरमान ('क्षमावंत होना' ऐसा) तूं बरावर पाल सकता है किंवा नहीं ?"

[१४] " नर्कमें परमाधामीका हाथसें मुद्गलका मार मैंने सहन किया था, देवलोकमें वज्रका मार इत्यादि परवश्य होकर सहन कियाथा; तो इतना अल्प दुःखसें मैं कायकु कायर होकर भगवंतका फरमान तोडके दुर्गतिका अधिकारी बनु ? "

[१५] " हे सुखका अभिलाषी आत्मन्! तूं चंदनकी तरह शीतल स्वभावी हो! सागर की माफीक उदारचित्त हो ! पुष्पको माफीक दुःख देनेवालाकु भी सुखकर हो! तेरा क्षणभंगुर शरीरके विनाससें दूसरे प्राणोको सुख होते हे तो होने दे; और अन्य जनोका सुख देखकर तूं सुखी बन रहे. "

[१६] "यदि कृतघ्नी और द्वेषी पुरुष इस जगतमें नहीं होता तो तेरा जैसा संत पुरुषकी खबर ही क्या पडती? इस लिये कृतघ्नी और द्वेषी पुरुष तो तेरे गुनके प्रकाश करनेवाले उपकारी जीव हैं. "

[१७] "जो समर्थ होके क्षमा करे उस्की बलीहारी है, उस्कु धन्यवाद हे ! क्यों की निर्बल तो वैर ले सकते ही नहीं. और जो सबल होनेपर भी वैर न लेवे और क्षमा गुनमें रहे उस्कु बहूत ही धन्यवाद हैं. वैर लेना सहेल हे; क्षमा करना मुश्कील है."

[१७] "सत्पुरुषकु लाजीम है की अपना महान प्रतापी पिताका अनुकरण करना. अपना पिता श्री महावीर प्रभु एक रात्री एक ग्रामके बाहीर ध्यानमें रहेथे. वहां गोपालक लोक (गोवालीयें) गायोको चरा-नेके लिये आये. और खडा हुवा आदमीकु देखके बोले की, 'हम रोटी खानेकु जाते हैं, आप हमारी गायोंको देखना.' प्रभु तो ध्यानग्रस्त थे, इस लिये सर्व गायो इधर उधर चली गइ. गवालीयें आके ब-हुत गुस्सा करने लगे. और प्रभुको मारने लगे. तब शक्रेन्द्रने आके गायो ला दी और प्रभुसें कहा की, 'आपको बहुत ही संकट पडेंगे इस लिये में आपकी साथ रहुंगा.' प्रभुने उत्तर दीया की, 'हे इन्द्र! मेरे कीये हुवे कर्म में ही सहुंगा.'

"प्रभुकी शक्ति इतनी है की दृष्टि मात्रसें जलाके भस्म कर सकते है. परन्तु अरिहंत प्रभु जैसे बलसें सूरे है ऐसे ही क्षमासें भी सूरे है 'क्षमा सूरा अरिहं-ता' कहे जाते हैं.

"एसे क्षमासागर प्रभुका धर्म और शरण पाया फीर भी क्रोध करना क्या मुझे उचित है?"

क्षमाकी प्रशंसा.

क्षमा है सो इहलोक और परलोकमें परम सुखकी दाता है. संसार समुद्रसें तारनेवाली है. ज्ञानादि रत्नत्रयींको धारन करनेवाली है. अनेक गुनो का समुहोकु प्रगट करने वाली है. चिंतामणी—क प-कुंज—पारसमणी--कामधेनु इत्यादिकसें जी अधिक सुखदायिनी है. मनको उज्ज्वल करनेवाली है; तन की माताकी तुल्य रक्षा करनेवाली है. वांछित का-र्यको पार पाडनेके बारेमें क्षमा महा मोहिनी मंत्र है. क्षमावंत मनुष्य कीसीका जी बुरा चींतवता नहीं है और बुरा करता जी नहीं है, इस लिये सारी दुनियामें इस्का कोइ वैरी (शत्रु) नहीं है.

इस जगतमें जो जो शुज गुन हैं उन सबकों धारन करनेवाली क्षमा ही है; इस लिये कहा है की "क्षमा स्थापते धर्म" अर्थात् "क्षमा ही धर्म रहनेका स्थान है."

क्षमा सारीखा तप डुसरा नहीं है. ("क्षमा तुल्यं तपो नास्ति") श्री "अध्यात्म प्रकरण " में कहा है "एक मनुष्य ६६ क्रोड उपवास करे और डुसरा

मनुष्य समर्थ होने पर भी एक गाली सहन कर ले तो दोनुमें गाली सहन करने वालाको ज्यादे फल होता है."

इस लिये आत्मसुखार्थी प्राणीको सदा सर्वथा क्रोधका त्याग और क्षमाका धारण करना अवश्य जरुरका है."

अब मैं युरोपोयन विद्वानोंके भी थोडे वचनामृत लीखूंगा, की जीसमें थोडे शब्द और बहुत ही गांभीर्य हैः—

Anger begins with folly, and ends with repentance ——Maunder's Proverbs

"क्रोधका आदिमें मूर्खता है और अंतमें पश्चात्ताप है."—मोन्डर.

***

An angry man opens his mouth and shuts his eyes ——Cato

"क्रोधी मनुष्य मुख खुल्ला रखता है और नेत्र बंध करता है"—केटो.

**

When Passion enters at the fore gate, Wisdom goes out at the postern ——Fielding's Proverbs

"जब अगले द्वारसें क्रोध प्रवेश करता है तब पीछले द्वारसे शाणपण भाग जाता है."—फीव्हडींग.

No man is free who does not command himself ——Pithagoras

"वह आदमी स्वतंत्र नहीं है, की जो अपनकु अपना तंत्रमां नहीं रखता हे."—पीथागोरस.

An angry man is again angry with himself when he returns to reason ——Publius Syrus

"क्रोधी मनुष्य जब शांत होते है तब फीर आपसें क्रोध करते है."—पब्लीअस साइरस.

Anger is certainly a kind of baseness, as it appears well in the weakness of those subjects in whom it reigns—children, old folks, sick folks

——Lord Bacon

"गुस्साका साम्राज्य बहुत करके बाल, वृद्ध और आजारपें चलता है, इस लिये समझा जाता है की गुस्सा है सो निर्बलताका चिन्ह है और नीचता है"

—लॉर्ड बेकन.

Forgiveness is the noblest revenge

"क्षमा है सो सबसे उमदा प्रकारका वेर है."

Whosoever shall smite thee on thy right cheek, turn to him the other also —— Matt V 39

"यदि तुझे कोइ दायां गालपें तमाचा मारे तो बायां गाल भी उसको पास धरना"—बाइबल.

* * *

Bless them that curse you —— Matt V 44

"जो तुझे शाप दे उसको तूं आशिर्वाद दे"-बाइबल.

* * *

A soft tongue breaketh the bone -Prov XXV 15

"सुंवाली जवान हाडकु भी तोडती है."

* * *

A spoonful of oil is better than a pint of Vinegar

"पोने रतल सीरकासें एक चमची तेल अच्छा है."

* * *

Forgive and ye shall be forgiven —Luke, VI 37

"क्षमा करः तूझे क्षमा दी जायगी."-बाइबल.

प्रकरण २

मुत्ति (मुक्ति) अथवा संतोष.

दुखो हया जस्स न होइ मोहो मोहो हया जस्स न होइ लोहो ।
लोहो हया जस्स न होइ चण्हा चण्हा हया सो अकिंचणाव ॥

श्री उत्तराध्ययन सूत्र.

जिस्के लिये मनुष्य भूख—प्यास, ठंड—ताप और मारताड आदि सहन करते हैं, पर्वतपे चड जाते हैं, खाडमें उतर जाते हैं, जंगल झाडीमें पड रहते हैं, विवेकबुद्धीको विरुद्ध होकर चोरी और खून भी करते हैं, जिस्के लिये यह सब अनर्थों मनुष्यों कर रहे हैं वह चीजको कोन नहीं पिछानते है? वह चीज लोभ ही है, की जो देखते हुए मनुष्यको अंध बनाते है. लोभके सबबसें पिता पुत्रको और पुत्र पिताको दगा देता है. लोभके सबबसे राजा प्रजाके शिरपे असह्य कर (टाक्ष) डालता है और प्रेम खोता है. लोभके प्रतापसें परमपूज्य निन्द्य हो जाता है.

लोभ और विषय यह दो चीज ऐसी है की ज्यों ज्यों उसको ज्यादे तृप्त करो त्यों त्यों संतुष्ट होनेके बदल ज्यादे खोराक मंगती है. सुंदरदासने ठीक कहा है कीः-

जो दश वीश पचाश भये शत-होइ हजार तु लाख मगैगी;
कोटी अरब्ब खरब्ब असंख्य, धरापति होनेकि चाह जगैगी;
स्वर्ग पतालको राज करौं तृसना-अधिकी अति आग लगैगी;
'सुंदर' एक संतोष विना, शठ! तेरि तो भूख कबु न भगैगी!

सच्च है; एक संतोष विना मनुष्यको भूख कभी शान्त होनेवाली नहीं है. श्री'उत्तराध्ययन'सूत्रमें भी फरमाया है को-जाहा लाहो ताहा लोहो। लाहो लोहो पवढइ॥

अर्थात् ज्यों ज्यों लाभ होता है त्यों त्यों लोभकी वृद्धि होती जाती है.

जब 'पाइरस' बादशाह 'इटली' देशको जीतने के लिये तैयार हुआ था तब उसको 'सीनीआस' नामका फीलसुफ (तत्ववेत्ता) ने पूछा को, आप कीधर जाते हो?

राजाः-'इटली' जीतनेके लिये.

फीलसुफः-'इटली' हस्तगत होनेसे क्या करोगे?

राजाः-'आफ्रिका' हस्तगत करेंगे.

फीलसुफः-पीछे?

राजाः-पीछे आराम और आनंद लेंगे-

फीलसुफः-तो अन्नी आराम और आमंद क्युं नहीं लेते हो जी ?

परन्तु, नहीं; जो लोभी है उस्के नसीबमें ही दुःख और तकलीफ है, इस लिये वो अवलसे संतोष धर शकते नहीं. श्री 'उत्तराध्ययन' सूत्रमें एक अति सुंदर गाथा फरमाइ है की जीस्का भावार्थ यह है किः-यदि लोभी मनुष्यको मेरुपर्वत जीतने मोटे सोना-रुपाके असंख्य ढग करके कोइ देवे तो भी उस्की तृष्णा किंचित् मात्र भी तृप्त न होगी; क्युं की धन तो असंख्याता है परन्तु तृष्णा तो अनंतो है. श्री 'महाभारत' आदि पर्वमें 'ययाति'ने कहा हैः-

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव पुनरेवाभिवर्द्धते ॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात्तृष्णां परित्यजेत् ॥
यादुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः ।
यो सौ प्राणांतिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥

अर्थात्-"ज्युं अग्निमें घृत डालनेसे अग्नि प्रज्लीत होती है त्युं कामका उपभोग करनेसे काम शांत नहीं होता है. विश्वकी सब दौलत, धान्य, पशु, स्त्री आदि सब एक ही मनुष्यकु मीले तो भी उस्की तृष्णा तृप्त नहीं हो सकती है. इस लिये तृष्णाका

त्याग करना ही श्रेष्ठ है. दुर्मतिवाले लोग तृष्णाका त्याग नहीं कर सकता है. ऐसे लोग ज्युंज्युं वृद्ध होते जाते हैं त्युं त्युं तृष्णा कुछ वृद्ध नहीं होती है परन्तु जैसे कोइ प्राणघातक दर्द प्राणकी साथ ही नष्ट होता है ऐसे ही तृष्णा मनुष्यकी साथ ही मरती है. उस्को तो त्यागनेसे ही सुख है."

यदि आप शहरकी बाहेर खुल्ले मेदानमें जाके खडा रहोगे, आकाश आपसें कोष--दो कोष दूर लगेगा; परन्तु जब आप दो कोष जा पहुंचेगे तब और भी दो कोष दूर आकाश देखेंगा.इसी तरह तृष्णा भी ऐसी चीज है की जीस्को आप पकड नहीं सकते हो.

श्री 'ठाणांग' सूत्रमें तृष्णाको एक प्रकारकी खाड कही है. स्मशानकी खाड, समुद्रकी खाड, पेटकी खाड इत्यादि खाडकी माफीक तृष्णा भी एक प्रकारकी खाड है, जीस्मेंसे बाहर आना बहुत मुश्कील है.

क्रोधकी माफीक लोभका सैन्यमेंभी१३०० योद्धे हैं. इस लिये क्रोध एक महा बलवान शत्रु है. तो भी युक्तिसे इस्का पराजय हो सकता है.

तृष्णाका पराजयके लिये चावी-कूंची (Keys)

(१) लक्ष्मीकी तृष्णा जीस्कु ज्यादे हो उस्को विचारना चाहिये की, क्या धनमें ही सब सुख आ

रहा है? क्या ज्यादे धनसे ज्यादे सुख होता है? सच बात तो यह है कीः—

> नवी सुही देवता देवलोए, नवी सुही पुढवीपइ राया ।
> नवी सुही शेठ सन्यावइए, एगंत सुही साहू वीयरागी ॥

अर्थात्, देवलोकके देवता जिस्को रहनेके लिये रत्नमय विमान है, आनंदके लिये अति सुंदर देवीयों हैं और जो मरजी मुजब रुप कर सकते हैं वह भी सुखी नहीं है, क्युं की सबसे ज्यादे तृष्णा देवतामें रहती है, इस लिये वह हरहमेश, अन्य देवोंकी समृद्धि देख कर इर्ष्यावंत होके भस्मीभूत होते हैं. पृथ्वीपति राजा जिस्की पास दास-दासी-नौकर चाकर-सैन्य-लक्ष्मी आदि सब चीज हैं वो भी सुखी नहीं है; क्युं की उनकु स्वजन और स्वधनका रक्षणकी चिंता और सगा स्नेहीका दगाका डर इतना है की वो घडीभर भी सुखसे सोता नहीं है.इसी तराह शेठ और सेनापतिको भी सुख नहीं है. शीर्फ रागद्वेषसे दूर रहनेवाला साधुजी ही सुखी है, की जिस्को कोइ तराहकी तृष्णा और चिंता नहीं है. धन तो प्रायः सदा ही दुःखदायक है.

(२) धन कुछ खानेमें-पहरनेमें नहीं आता है रुपैयाको घीस कर खाने पीनेसे कुछ दर्द नहीं मीटता

है. लक्ष्मीसे कुछ बुढापन मीटके युवावस्था प्राप्त नहीं होती है.

(३) ऐसा नही है की धनवान तो चांदी-सोनेकी तरकारी खावे और निर्धन जन मीट्टी खावे. गरीब जन जो अन्न खाते हैं इससे अच्छी तराहसें पुष्टी मीलती है. प्रायः निर्धनोंका शरीर धनिकोंसे बहुत पुष्ट होता है.

(४) 'कीडीको कण और हाथीको मण' मील ही रहता है. नाहक इधर उधर दौड धाम करके आत्मशांति गुमानेसे क्या होता है ?

(५) महा दुःखसे संपादन किया हुआ द्रव्य कायम रहता नहीं है. चाहे उतने बंदोबस्त करो तो भी जब उस्का काल परिपक्व होगा तब आपसे चला जायगा.

(६) महम्मद घीजनवीने नगरकोटका मंदीर लूटके २० मण झवेर, २०० मण सुवर्ण, २००० मण रूपा, और अगणित रोकड दाम लीया था. इस्के सिवाय और १६ हुमले करके हिन्दुस्तानसे बहुत हो धन लुट लीया था. वो मरनेको तैयार हुआ तब वह सब धनका एक बडा भारी ढग बनाके उस्के उपर जाके बैठा और एक बालककी माफीक रोने लगा की

"हाय ! इस्मेंसे एक कौमी भी मेरी साथ नहीं चलेगी ?" इस तवारीखसे समझना कि, धन कीसीकी साथ नहीं चलता है. परन्तु ,जो उमदा गुन और पुण्य प्राप्त कीया होगा वोही साथ चलेगा.

(७) आपसे जो निर्धन है उस्की स्थितिका खयाल करो आपसे बडे है उस्की तकलीफका विचार करो. पीछे कहो की आप सुखी हो या नहीं ?

(८) संतोष है सो नीतिका सूर्य है. सूर्य सृष्टिको पालनेवाला—प्रकाश देनेवाला है और संतोष मनुष्योंको सुख और आनंद देनेवाला है.

(९) तोफानी समुद्रमें तेल डालनेसे शांत हो जाता है, ऐसेही चिंतासे भरपुर इस जगतमें 'समता' सब दूःखोंको शांत करती है.

(१०) मीजाजी कुमारिका और लक्ष्मी : दोनोका स्वभाव एक ही है. जो लोग उस्के पीछे उल्लु बनके फीरते हैं उनकु वो नहीं स्विकारती है; और जो उन्की दरकार नहीं करते हैं उन्की पास आप ही जा पहुंचती हैं.

(११) लक्ष्मीका लोभ मनुष्यको धर्मसें, दानसें, दयासे, भावनासे, सद्विचारोंसे दूर रखता है और स्वार्थी, टुंक दृष्टिवाले, द्वेषी बनाते है.

(१२) शरीर पोषणके लिये अन्नकी जरुरत है, परन्तु ज्यादे खानेसे दर्द होता है. संसारीको पेसा जरुरकी चीजहै परन्तु पैसाका लोभ नुकशानकारकहै.

(१३) धनाढयोंके* घरमें जीतने कुकर्म होते हैं इतने अन्य कोइ स्थलमें नहीं होते हैं. गणिका सेवन, अभक्ष्यभक्षण, जूवा, क्रोध, आदि दुष्ट काम बहुत कउतने कीधर भी नहीं होते हैं. क्रीश्चीअन धर्मका पोप स्वर्गकी टीकीट बेचने लगा इस्का सबब पैसा ही था; निःस्पृही महात्मा शंकराचार्यके अनुयायीओं लोगोंकु मारताड करने लगे उस्का सबब पैसा ही है; जैन साधु जीनको अकिंचन कहा जाता है उस्में भी कीतनेक तृष्णाके वश होकर श्रावक लोगोंकी पास रुपैये जमा रखते हैं. अब कहीए, पेसा कैसी खुवारी करता है?

'सोलोमन' एक बडा भारी विद्वान और पवित्र* पुरुष था. परन्तु जब उस्को राजा बनाया तब ईश्वरको भूल गया और दुःखी हो गया.

---

* "Gold glitters most where virtue shines no more.
"As stars from absent suns have leave to shine"

'डॉक्टर यंग' कहते है की, ज्यों सूर्यकी गेरहाजरीमें ताराकु प्रकाशनेकी परवानगी है, त्यों सद्गुणकी गेरहाजरीमें सुवर्ण भी बहुत प्रकाश कर रहता है मतलब जीधर सुवर्ण है उधर सद्गुण क्वचित् ही द्रष्टिगोचर होता है

* "Contentment is the true philosopher's stone"

(१४) 'लॉर्ड बेकन' ने कहा है की—

"बहुत लक्ष्मीको मत ढुंढो. परन्तु जो कुछ प्रमाणीक उद्योगसे मीले उससे संतुष्ट रहो, विचारपूर्वक उपयोग करो, खुशीसे अन्य जनोंको दान करो और जो कुछ रहे सो कुटुम्बके लिये रख जाओ"

जीस्की पास द्रव्य है उस्का कर्त्तव्य क्या है?

जानना चाहीये की धन मीलता है सो पूर्व भवकी कमाइ है. कोइ मनुष्य बैठ बैठ कर सब धन खा जावे तो उस्को मूर्ख कहा जाता है. ऐसे ही जो मनुष्य पूर्व भवकी कमाइ इस भवमें खा जाता है और नया पुण्य उपार्जन नहीं करता है उससे भारी मूर्ख* दूसरा नहीं हो सकता है. कीसनदासजीने कहा है कि—

मोसम समे 'किसन' कीजिये असम श्रम, बैठे क्रम क्रम पूंजी गांठकी न खाइये; काल काल करत परत आन काल पास, कालकी न आस कछु आज ही बनाइये; कायामें न आइ काइ तोलों करि ले कमाइ, आग लगे मेरे भाइ मेह कहां पाइयें?

और—

कोरी कोरी कर कोरी लाखक करोरी जोरी, तोऊ माने

---

* 'पोलोक' (Pollok) नामक विद्वान तो इतने तक कहते है की लक्ष्मीको पकड रखनेवाला मनुष्य सबसे पतीत और नीच है

But there was one in folly further gone,
The laughing stock of devils and of men,
The Miser, who, with dust inanimate
Held wedded intercourse, of all God made upright
Most fallen, most prone, most earthly, base art thou!

थोरी जाने लीजे जग लूटके, मायामें अरुज्यो पर स्वारथ न सूज्यो, परमारथ न बूज्यो, भ्रमन्नारथतें छूटके. जगतको देत दगे, आन जम दूत लगे, 'किसन' जो सगे वउ ठगे न्यारे फूटके, हंस अंस ऐंच लियो, अंग रंग न्नंग न्नयो, जैसे वीन वजत गयो है तार तूटके!

और न्नी—

आगे जो ठिकाना सो तो मुलक विराना, तहां गाठ हो का खाना, दाना वैठे तिन खाना है; ताते मनमाना, पूर कर ले खजाना, अब 'किसन' सयाना, जो तुं दाना मरदाना है

'लॉर्ड बेकन' कहते है की, सब गुणोंमें दानका गुण अव्वल दरज्जाका है वह ईश्वरी गुण है. जो मनुष्यमें यह गुन बीलकुल नहीं है वो कीडा जैसा क्षुद्र और तुच्छ प्रानी है.

कोइ अज्ञान लोग कहते हैं की "ह्यांका सुख मीठा, आगे किन्ने दीठा?" ऐसे आदमीको समझाना चाहिये कीः—देखोये! एक मनुष्य ऐसा है की जिस्की पास रहनेके लिये झुंपडी न्नी नहीं है, खानेके लिये रोटीका टुकडा न्नीख मांगनेसे भी नहीं मीलता है, जीस्की पास स्त्री—पुत्र-स्वजन-मित्रादि कोइ नहीं है और जो दर्दमें डुब रहा है. दुसरा एक आदमी ऐसा है की जीस्को रहनेके लिये सुंदर राजमहल है, खानेके लिये स्वादिष्ट न्नोजन है, अखूट लक्ष्मी बिना श्रम ही मीलो है, स्त्री—पुत्र—स्वजन—मित्रादि सब हैं

और तबीअत भी अच्छी है. अब विचारिये की उस्का सबब क्या ? पूर्वभवकी कमाइ; और कुछ नहीं.

इस लिये सुज्ञ जनोंको लाजीम है की भविष्यके लिये इस जन्ममें कुछ दान पुण्य करना. कृपण लोगकी लक्ष्मी पुत्री तुल्य है और उदार जनकी लक्ष्मी स्त्री तुल्य है. जैसे पिता पुत्रीका रक्षण करता है और उस्को भोगनेवाला तो और कोइ मनुष्य होगा; ऐसे ही कृपण मनुष्य धनका रक्षण करता है परन्तु उस्को भोगनेवाला तो पुत्र—राजा—चोर—अग्नि—जल आदि हैं. परन्तु उदार पुरुष अपनी लक्ष्मीका सदुपयोग आपही करता है और लक्ष्मीसे इहलोक और परलोकमें सुख प्राप्त करता है

धन धरतीमें रखा होगा वहां ही रह जायगा, घर—दुकान—और अश्व—रथ आदि जहां होगा वहां ही रहेगा, स्त्री दरवाजा तक आके ठेरेगी, स्वजन स्मशान तक साथ आयगे, शरीर चीता तक सोबत करेगा; परन्तु धनसे, दुकानसे, अश्वसे, स्त्रीसे, स्वजनसे, और शरीरसे जो कुछ जनसेवा की होगी वोही साथ चलेगी.

आश्चर्य है की सबसे ज्यारी कृपण भी ग्रामान्तर जानेकी बख्त खानेका बंदोबस्त कर लेता है,

परन्तु परन्नवकी मुसाफरीके लिये कुछ भोजनका बंदोबस्त नहीं करता है. परन्नवकी मुसाफरी जरूर करनी होगी. वहां कोसीको बूम और वार नहीं पहुंचती है. जो चीज साथमें रखी होगी वोही काम लगेगी. मुसाफरी कब करनी पडेगी इस्का कोसीकु ज्ञान नहीं है. इस लिये हमेश तैयार रहना चाहिये. क्युंकी मुसाफरी शुरु होनेके वाद पश्चाताप करनेसे कुछ नहीं हो सकता है.

साधुकु दान कैसा देना?

साधुको अतिथि कहा है, क्युंकी उस्के आनेकी तिथि मुकरर नहीं है. ऐसा पवित्र साधुको १४ प्रकारके दान देनेसे वडा न्नारी लान्न होता है (१) अन्न (२) जल (३) सुखडी (४) मुखवास (५) सूतके वस्त्र (६) उनके वस्त्र (७) वोछानेके वस्त्र (८) काष्ट–तुंवादिकके पात्र (९) वेठनेके लिये पाटला (१०) सोनेके लिये पाट (११) रहनेके लिये मकान (१२) बीछानेके लिये घास–पराल. (१३) औषध (१४) सूंठ–तज आदि भेषज+.

---

* चार कोस ग्रामान्तरे, खरची बांधे लार;
परभव निश्चय जावणो, ह्यांकी बूम ने वार!

\+ जैन गृहस्थोंको इतना भी जानना चाहिये की इन १४ प्रकारके दान मुनीराजको देती वख्त लूण, अग्नि, ठंडा जल आदि सचेत वस्तुका स्पर्श न होना चाहिये और जो चीज मुनीको देनेकी होवे सो खास मुनीके लिये वनी न होनी चाहीये.

इन १४ प्रकारके दान मुनीराजको उल्लाससे देवे तो महत् फल मीले

दानके १० प्रकार.

श्री ठाणांगजी सूत्रमें कुल १० प्रकारके दान कहे हैं, जीस्का विवेचन नीचे कीया गया है.

अणुकुपा सग्रेह चेव, ऽभयँ कालूँणिपतिय, लज्जाए गारवेण च,
अहमें पुण सत्तम, धम्म अठमें वुत्त, काहीतिय कयतिय ॥

(१) अनुकंपा दानः—दुसरेको दुःखी देखके दया लावे और अपनी शक्ति अनुसार अन्न-वस्त्रादिक दे कर-साता उपजावे

(२) संग्रह दानः—अनाथ, असमर्थ, दुष्कालसे पीडित, राजा-चोर-अग्निका त्राससे दुःखी इत्यादिक प्रानीको सहाय करना सो संग्रह दान.

(३) अभय *दानः—कोइ प्रानीका वध होताहै उसको मृत्युसे छुडाना सो अभय दान

(४) कालूणीए दानः—स्वजन मरजानेसे उस्के पीछे गौ आदिकका दान देते हैं सो.

(५) लज्जाए दानः—लज्जाके लिये दान करे सो.

---

*यह विषयका ज्यादे वर्णन "हितशिक्षा" नामक पुस्तकमें किया गया है. सब धर्मका सार इस्मे लीखा है. अवश्य पढने लायक है किम्मत ०-४-०. 'जैन हितेच्छु' ऑफिस-अहमदाबाद. इस मुजब लीख कर पत्र भेजनेसे पुस्तक मीलेगी

(६) गारवे दानः—अभिमानसे दान करे सो.

(७) अहम्म दानः—गणिका आदिको नचाके दान देना सो 'अहम्म दान' (अधर्म दान) है. इस्से कुच पुण्य नहि है, परन्तु कर्मका बंध होता है

(८) धम्म दानः–साधुजन और साधु जैसे संसारी जनोंको दान देनेसे धम्म दान होता है धर्म क्रियाके उपकरण, धर्मपुस्तकों आदि देना उस्को भी धम्म दान कहते हैं

(९) काहोतिय दानः–"इस मनुष्यने प्रथम मेरे उपर उपकार किया था, इस लिये उस्को दान देना मुनासिब है" ऐसा बिचारके दान देना सो.

(१०) कयतिय दानः–भाट-चारणादिकको देना सो कीर्तिदान

इन १० पकारके दानमें कोन कोन प्रकारके दान उत्तम है, कोन कनीष्ट है और मध्यम है सो बिचारनेका काम पाठकगणका है

दान देनेसे भंडार खाली होता है* या नहीं उस्का बराबर बिचार कोइ कृपणको समझावे तो आपही दान देनेको तत्पर हो जावे. क्युंकी तीजोरीमें रखे हुए रुपैयेमें कुछ वृद्धि नहीं होती है परन्तु दानमें देनेसे मारवाड़ी सूत (व्याज)सें भी दशगुणा व्याज

मीलता है; अर्थात् बहूत लाभ मीलताहै. कहा है की—

व्याजे द्वीगुणं वित्तं, व्यापारे च चतुर्गुणं,
सेते शतगुणं वित्तं, दाने च अनंतगुणं.

इस लिये उत्तम पुरुष हमेश दानके लिये तैयार रहता है और दान देकर गर्व नहीं करता है अथवा उपकार कहो वताते नहीं है. वो तो ऐसा समझता है को दान लेनेवालेके कारनसें ही मुझे इतना पुण्यका प्रसंग मीला.

जो लोक दान* देनेसे पीछे हठते हैं उन्का भोगांतरायो कर्मका नाश नहीं होता है

आखीरमें सुपात्र दानसे क्या लाभ मीलता है इस्के वारेमे एक श्लोक लीखके इसविषय खतम करुंगा

---

* लक्ष्मीसे कोन कोन प्रकारका परोपकार हो सके उस्की तफ्सील नोंध इधर लीखी है —

(१) अनाथ जनोंके लिये आश्रम (२) विसामा और धर्मशाला (३) जलस्थान (कुवा–परब आदि) (४) धर्म स्थानक (५) दुष्करशाला (६) ज्ञानशाला (७) दवाशाला (८) विधवा आश्रम (९) पुस्तकशाला (१०)उपकारी पुस्तक मुफत बांटना (११) संसार सुधारकोंकु मदद •(१२) देशका उद्धार और रक्षण कर्त्ताओंको मदद (१३) अहिंसाका उपदेशके लिये बदोबस्त (१४) दुष्कालादि प्रसंगमें खानदान परंतु निर्धन बने हुए कुटुम्बोंकु गुप्त मदद इत्यादि.

* महात्मा श्री 'त्रिलोक ऋषिजी'ने बराबर कहा है कि.—

लक्ष्मीः कामयते मति मृगयते कीर्तिस्तमालोकते।
प्रीति श्चुम्बति सेवते सुभगता निरोगता ऽलिंगति॥
श्रेयः संहतिरभ्युपैति वृणुते स्वर्गोपभोगस्थिति।
मुक्तिर्वांछति यः प्रयच्छति पुमान् पुण्यार्थंनिजं॥

अर्थः—जो पुरुष श्रेयस्कार अर्थके विषे अपना द्रव्य व्यय करता है उस्को लक्ष्मी वांच्छती है, वुद्धि ढुंढती है, कीर्नि देखती है, प्रीति चुम्बन करती है, सौभाग्यता सेवा करती है, निरोगता आलिंगन करती है, कल्याणपरंपरा उस्की सन्मुख आती है, स्वर्गके उपभोगकी स्थिति उस्की साथ सादी करती है, और मुक्ति उस्की वांछना करती है·

जो हरएक मनुष्य इसमेसे एक एक दीशामें यथाशक्ति द्रव्यका व्यय करे तो कीतना भारी उपकार होवे? लक्ष्मी एक दीन उस्का मालीकको छोड जानेवाली तो है हीं, तो फीरकायकु उस्का सदुपयोग करके स्वार्थ और परमार्थ दोनु नहीं साधना?

कुंडलिया

जब लग पोते पुन्य है, तव लग संपत जाण,
सपतसे लक्ष्मी रहे, शंका दिल मत आण,
शंका दिल मत आण, दान पुन सुकृत कीजे;
जीणसे वधे फिर पुण्य, माया सो कवहू न छीजे,
'तिलोकरिख' कहे कूपजल, उलचा होत सवाण;
जब लग पोते पुन्य है, तव लग संपत आण

प्रकरण ३

ऋजुता अथवा सरलता.

माया विजएणं भंते जीव किं जणयइ ॥
माया विजएणं अज्जवं जणयइ ॥

[अर्थ —मायाको जीतनेसे जीवको क्या फल होता है ? अज्जव अर्थात निष्कपटता–सरलता–ऋजुताकी प्राप्ति होती है.]

विश्वमें सुवर्ण कमती और मूल्यवान चीज है. इस लिये धनाढ्य लोगों ही सुवर्ण के अलंकार पहरके शरीरकी विभूषा करते हैं. अच्छा दीखनेका सबको पसंद है. निर्धन लोगोंकी पास सुवर्ण नहीं है तो पीतलके दागिने बनवाते हैं और उसपे सुवर्णका ओप (गील्ट) लगाते हैं. परन्तु जब कोइ आदमी ऐसा झूठा सुवर्णका दागीना पहर

कर बाझारमें जाता है तब व्यापारी लोग उनको शीघ्रमेव पीछान लेते हैं; उस्के गलेमें सुवर्णमाला देखकर उस्को शाहुकार नहीं समझते हैं और कुछ दाम विश्वासपें नहीं देते हैं; परन्तु उस्को ढोंगी समझ कर उससे बात भी नहीं करते हैं.

ऐसे ढोंग आजकल बहुत ही चल रहे हैं. कृत्रीम (बनावटी) सुवर्ण, कृत्रीम हीरा, कृत्रीम मोती कृत्रीम रेशम, कृत्रीम ज्ञान, कृत्रीम भक्ति और कृत्रीम साधुता आजकल बहुत ही दृष्टिगोचर होती है.

हीरा—माणक—मोती आदि झवेरात बहुत मूल्यवान होनेके सबबसे बडे बडे राजा लोगोंकी पास भी वह चीज ज्यादे नहीं होती है. परन्तु आज अमेरीकन लोगोंने कृत्रीम (बनावटी) हीरा-पोखराज-मोती बनाये हैं कि जो देखनेमें तो हजारो रुपैयेके झवेरातकी बराबरी करते हैं, परन्तु थोडे रोजमें वीगड जाते हैं. बनावटी चीज कभी सच्ची चीजकी बराबर नहीं हो सक्ती है. यदि होते तो क्या कृत्रीम हीरा वेचनेवाले अमेरिकन मूर्ख हैं की १०००) का नंग शीर्फ ५) रुपैयेमें दे देवे? परन्तु जो लोगको पास लक्ष्मी नहीं है और लक्ष्मीवानोंकी बरा-

बरीमें दीखनेकी आकांक्षा करते हैं. ऐसे लोग ही ऐसी कृत्रिम चीजों खरीदते हैं और थोडे रोजमें हाथ घीसते हैं. गरीब दीखनेमें शरम माननेवाले आजकल बहुत लोग हैं. उस्को कोइ गरीब कहते है तो गाली देते हैं. परन्तु जानते नही कि गरीबाइ यह कुछ अपराध नहीं है; गरीब होने पर भी जो आदमी शुद्ध वर्त्तनवाले है उस्को बडे बडे लोग भी मान देते हैं. दुनियामें जीतना दुःख गरीबाइसे नहीं होता है इतना ही गरीबाइकी शरमसे होता है. जो लोग गरीबाइकी शरम रखते हैं उन्के लिये पहिला नंबरकी सलाह यह है कि गरीबाइका डर रखना अर्थात् बडा आदमी दीखनेका ढोंग करके खर्चमें नहीं पडना. ढोंग कभी छूपा नहीं रह सक्ता है; क्युं कि खाली थेली खडी नहीं रह सक्ती है. इस लिये सरल होना बहुत लाभकारक है. सुज्ञ जनों अपनी स्थिति छुपानेकी कोशीश कभी नहीं करते हैं.

कीतनेक शाहुकार कपडका, अनाजका किंवा और और धंधे करते हैं. वहारसे वोलते हैं कि "हम फलाने कुडम्बके हैं, हमारे जैसे सच्चे कोन है? पांच टकासे ज्यादे लाभ हम कभी नही मंगते

हैं" ऐसे बोलतेही ग्राहकोंका शिर काटते हैं. ऐसे क-पटी लोग कभी कभी धर्मके सपथ [सौगन] भी लेते हैं. परन्तु धर्म उनसे हजार कोष दूर ही रहता है. देव द-र्शन और धार्मिक क्रिया आदि सबमें अव्वलमें अव्वल सरलता-सच्चाइ चाहिये. मायाका सेवन करना और ईश्वरका नाम जपना ऐसा "बग भक्त" तो सबसे दुष्ट है.

इससे आगे चले तो माया कपटका सेवन क-रनेवाला एक और रकमका वर्ग दीखा जायगा. वह वर्ग पंडीत लोगोंका है. कीतनेक लोग थोडा बहुत पढकर ज्ञानीका ढोंग कर रहे हैं और सच्चा ज्ञानीका द्रोह करते हैं; स्वकल्पीत गपोडे चलाते हैं; भोले लोगकु भरमाते हैं. ऐसे लोगोमें ऐसे भी आदमी होते हैं कि जो साधुताका भी दंभ करनेमें पीछे नहीं पडते हैं. कोइ, लोगोंकु बतानेके लिये तप जप करके महा पवित्र कहलाते हैं; कीतनेक तो कहते है कि हम त्रिकालज्ञानी हैं, हमारी साथ देवों बात करते हैं; हम ईश्वरका फिरस्ता हैं; ऐसी ऐसी धूर्तता चलाते हैं.

ऐसे धूर्त लोग बहारसे तो पवित्रताका और

नम्रताका बहुत ही देखाव करते हैं. नम्रता और प-
वित्रता तो उस्के लिये 'व्यापारकी चीज' है. कहा
है कि—

नमन नमनमें फेर है, सब सरिखा मत जान;
दगाबाज दोना नमे, चीत्ता–चोर–कमान

चीत्ता बाघ, चोर और धनुष्यकी कमान यह
तीन नमते हैं इस्का सबब यह है कि अपना स्वार्थ
बराबर साध सके. दगाबाज लोग नमते है इस्का
सबब यह है कि नम्रतासे लोगकु प्रसन्न करके पीछे
उस्को ठगना.

कहा है कि, " धूर्तस्य त्रिलक्षणं. " अर्थात्
धूर्तके तीन लक्षण हैं:–(१) उस्का मुख चंद्र समान,
(२) वाणी चंदन समान, और (३) हृदय डरता ही
रहता है. क्युं कि, धूर्तजन मूख पवित्र जन जैसा गं-
भीर बनाता है, वाणी चंदन जैसी शीतळकारी बोल-
ता है, परन्तु उस्का मनमें तो हर घडी डर रहता है कि
कभी कोइ मेरा ढोंगकु देख जावे तो मेरी कमबख्ती
होगी. कुदरतका स्वभाव ही है कि उस्को ओझल प-
डदा नहीं पसंद है; वह तो सच्चा रुप प्रकाशनेके लिये
हरहमेश प्रयास करती है. और धूर्त जन हर हमेश

सच्चा रुपको छुपाने के लिये प्रयास करता है. उस्को तो कुदरतकी विरुद्ध ही काम करनेका होता है. इस लिये उस्को हर घडी सावधान रहना पडता है. परन्तु जो सच्चा आदमी है वो तो निडर ही फीरता है.

श्वेतांबरी, पीतांबरी, रक्तांबरी, दीगंबरी और और तरेहके साधु बहुत ही नजरमें आते हैं. परन्तु परमात्माकी साधना करनेमें मग्न ऐसे तो सज्जन क्वचित् ही नजरमें आते हैं; उनके सिवाय और सब पाखंडी -धूर्त हैं; शीर्फ मान--पूजा-लक्ष्मी किंवा विषयसेवन के अर्थी हैं. कविरत्न किसनदासजीने सच कहा है किः-

जोलों भग तजी नाहिं तोंलों भगतजी नाहि,
काहेको गुसांइ जो गुसांइसों न यारी है;
काहेको विराहमन जारे है विराह मन,
कहा पीरजोपें पर पीर न विचारी हैं
कैसो वह योगीजन जाकों न वियोगी मन,
आसन हि मारी जान्यो आम नहि मारी है
उक्ति उपाइ ऐती उमर गमाइ, कछु
कीनी न कमाइ. काम भयो न भलाइको
इहां तो सदाइ धामधूम ही चलाइ पर.
उहां तो नहीं है भाइ राज पोपांबाइको!

सच है; 'उहां' पोपांबाइका राज नहीं है. 'इहां',

कोइ धूर्तताकु दंडनेवाला नहीं मील जावे तो 'उहां' तो अवश्यमेव मीलेगा.

श्री समवायांगजी सूत्रमां कहा है कि, १२ प्रकार के अपराधी जनोंको अपनी दुष्टताका फल ७० क्रोडाक्रोडी (क्रोड × क्रोड) सागरोपम वर्ष तक भोगना पडता है. इतना काल तक बोधबीज सम्यक्त्व ऐसे आदमीकु नहीं मीलता है.

यह १२ अपराधके नामः—

(१) ब्रह्मचारी न होने पर भी ब्रह्मचारी कहलाना; (२) बालब्रह्मचारी न होने पर भी बालब्रह्मचारी कहलाना; (३) तपस्वी न होने पर भी तपस्वी कहलाना; (४) बहुसुत्री [पंडीत] न होने पर भी पंडीत कहलाना; (५) नोकर होकर शेठ का धन चोरना; (६–७–८) राजा, गुरु, वडीलजन इतनेकी घात चिंतवना; (९) च्यार तीर्थमें फाटफूट कराना; (१०) देवता नहीं आते हैं तो भी देवता मेरा पास आते हैं ऐसा कहना; (११) स्त्री किंवा भर्त्ताको दगा देना; और (१२) विश्वासघात करना.

यह १२ प्रकारके अपराधी जनोंकु ७० क्रोडा-

क्रोडी सागरोपम तक बोधबीज सम्यक्त्व नहीं मील-ता है. और ऐसे पुरुषकी स्थिति कैसी होती है उस्के बारेमें श्री 'दश वैकालिक' सूत्रमें कहा है किः—

तव तेणे वइ तेणे । रूव तेणे य जे नरे ॥
आयारभाव तेणे यं । कुव्वई देव किव्विसं ॥

अर्थ—तपका चोर अर्थात् तपस्वी न होनेपर तपस्वी कहलाने वाला, बचनका चोर अथवा शास्त्रज्ञ न होने पर भी व्याख्यानमें इधरउधरके दो बोल बोलके सभाको ऐसा समझाना कि मैं शास्त्रज्ञ हूं; रूपका चोर, आचारका चोर और सूत्रार्थका चोरः ऐसा साधु मरके किलमीषी देव होता है. देवलोगमे इस जातका देव भंगी जैसा नीच गीना जाता है.

लद्धूणवि देवत्तं । उववन्नो देव किव्विसे ॥
तच्छावि से न याणइ । किं मे किच्चा इमं फलं ॥

वह किल्मिषी देव नहीं जान सकता है कि पूर्व भवमें मैं क्या कुकर्म किया था जीससे ऐसी नीच गतिका अधिकारी हुआ.

तत्तो विसे चइताणं । लब्भही एलमुयगं ॥
नरयं तिरिखजोणिंवा । बोहीजच्छ सुदुल्लहा ।

किल्मिषी देव मरके बोकडा होता है इस लिये

मुंगा२ दुःख सहन करना पडता है. फीर मरके नर्क तिर्यंच योनिमें जाता है. परन्तु उसको समकित रुप बोधबीज मीलना मुश्कील है.

श्री तीर्थंकर देवने तो वारवार पोकारके कहा है किः—

पूयणठा जसो कामी। माणसम्माण कामए॥
वहुं पसवई पावं। माया सल्लं च कुव्वई॥

पूजा–यश–सन्मानका अर्थी ऐसा साधु कपट करनेवाला है; इस लिये बहुत पाप उपार्जता है.

साधुका लक्षण तो यह है किः—

एवं तु गुणप्पेही। अगुणाणं च विवज्जाउ।
तारिसो मरणन्ते वि। आराहेइ संवरं॥

गुणका अर्थी साधु क्षमा, दया आदि गुणोंको आदरे और अविनय क्रोध-माया-हिंसा आदि अवगुणोंको वर्जे और मरण पर्यंत पंच महाव्रत रुप चारित्र पाले.

ऐसे ही पुरुषोंको मानना पूजना चाहिये. अन्य जनोंको नाहीं. इस्वीसनके सत्तरमें सैकेमें 'से-

बेटाइ सेवा' नामका एक मनुष्य कहने लगा कि, मैं ईश्वरका दूत हूं. परंतु कॉन्स्टॅन्टीनोपल शहरके वडे धर्माध्यक्षने कहा कि यह ईश्वरका दूतपें बंदुक फोडनी चाहिये; यदि वह सच्चा होगा तो गोली नाहिं लगेगी. इस युक्तिसे वह ढोंगी पकडा गया. उसी मुजब यदि सब ढोंगी लोगोंकु कोइ बुद्धिशाली नर प्रश्न करनेका और परीक्षा लेनेका परिश्रम उठावे तो जगत्तलमेंसे सब ढोंग अदृश्य हो जावे.

अंग्रेज लोगके धर्म पुस्तकमें कहा है किः— असलके 'फेरीसी' लोग बहुत दान देते थे, सदाचारका देखाव करते थे, धार्मिक क्रियाओंमें चुस्त थे, तो भी इसु ख्रीस्त उन लोगोंको कहता था कि यह सब लोग गणिकासे भी दुष्ट हैं; क्युं कि गणिका तो स्पष्ट कहती है कि मेरा धंधा ही बूरा है; परंतु यह धर्मदंभी लोग तो धर्मीष्ठ होनेका देखाव करते हैं और अंदरमें हलाहल विष रखते हैं. 'पोप' ने इस लिये कहा है किः—

Not *always* actions show the man; we find
Who does a kindness, is not *therfore* kind

भावार्थः—सामान्य रिति ऐसी है कि कामसे

मनुष्यका भितरकी परीक्षा की जाती है. परन्तु यह रिति हमेशके लिये विश्वासनीय नहीं है. जो आदमी कृपाकार्य करते है वह स्वभावसे मायालु ही होता है ऐसा निश्चय नहीं है. क्युं किः—

"An actor is no king, though he struts in royal appendage" बादशाही दमामसे घूमनेवाला नाटककार [पात्र] वास्तवमें राजा नहीं है.

माया जब खुल्ली हो जाती है तब वह मनुष्यको शर्म और भय होता है; परन्तु जब सद्गुण प्रगट होता है तब वह मनुष्यको कीर्त्ति और कभी लक्ष्मी भी मीलती है. इस लिये श्री ज्ञातपुत्र महावीर स्वामीने कहा है किः—

एयं च दोष दट्ठुणं । नाय पुत्तेण भासीतं ॥
अणुमाय पी मेहावी । मायामोसं वीवज्जए ॥

भावार्थः—बुद्धिमान लोगकु लाजीम है कि माया—कपट अणु मात्र भी नहीं सेवना; क्युं कि माया कपटके छोडनेसे नीचे लीखे हुए चार लाभ होते हैं:—

अज्ज वयाएणं काउज्जुएयं, भावुज्जुएयं, भासुज्जुएयं, अविसंवायणं जणयइ ॥

अर्थात्ः—निष्कपटपणसें कायाका, वचनका और भावका *सरळपणा होता है और कोइ अविश्वास नहीं करता है.

धर्म सीधा है और माया वक्रगती वाली है; इस लिये धर्ममें गति करनेका ताकाद मायावी पुरुषोंमें नहीं होती है, भगवानने भी कहा है कि "अज्जुधम्मगइ" अर्थात् जो लोग सरळ स्वभावी हैं वोही धर्ममें गति कर सकते हैं.

आखीरमें कविवर 'शेक्सपियर' का कहना खूब ध्यानमें रखनेकी सलाह दे कर इस प्रकरण समाप्त किया जायगाः—

To *thine own self* be true
And it must follow, as the night the day
Thou canst not then be false to *any man*

---

* कायाका सरळपणा अर्थात निष्कपटी मनुष्य अपना मुख कीसीसे छुपाता नहीं है वचनका सरळपणा अर्थात निष्कपटी मनुष्य बोलनेमें अचकाता नहीं है भावका सरळपणा अर्थात निष्कपटी मनुष्य कीसीका बूरा इच्छता नहीं है.

मतलब की, तुं तेरा आत्माकी साथ सच्चा× बन रहे; इससे तुं कभी कीसीको दगा नहीं दे सके.

× आत्माकी साथ सच्चा रहना इसको जैनमें 'भाव दया' कहते हैं. अर्थात आत्माको कभी ठगना नहीं, दु खी करना नहीं. जो आदमी भाव दया समझते है वो तो कभी 'द्रव्य हिंसा' और धूर्तता नहीं कर सकते है

प्रकरण ४.

मद्दव—मृदुता—नम्रता—निरभिमानी होना.

विणउ सासण मूल । विणउ निघाण साहगो ॥
विणयाउ विप्प मुक्कस । काउ धम्मो काउ तवो ॥

अर्थः—राग द्वेषको जीतनेवाले जैन शासन के मूलमें ही 'विनय' है विनय रुप उत्तम मूलवाला धर्मवृक्ष निर्वाणफल देता है. जीस्में विनय गुण नहीं है उन्का धर्म और तप कुछ गीनतीमें नही हैं

मनुष्य प्राणीमें जीतना अभिमान है इतना और कोइ प्राणीमें नहीं है. हिंदुस्तानमें इस अभिमानके प्रभावसे ही भिन्न भिन्न वर्ण-ज्ञाति हो गइ हैं. बनीया कहता है, 'हम क्षत्रीकी रसोइ नहीं जीमनेवाला;' क्षत्री बोलता है, 'हम बनीयाका अन्न नहीं

खाने वाले.' दोनु अपने मनमें मगरूर हैं. बनीआ और क्षत्रीकी बात तो दूर ही रहने दो परन्तु भंगी भंगीकी साथ लडता है तब क्या बोलता है? "देख! में तेरा जैसा नीचा नहीं हूं. मेरी जूतीमें पांव रखने वाले कोन है? में कुछ जैसा तैसा नहीं हूं." अब देखीये! भंगीको भी कीतना अभिमान है?

अभिमान क्या क्या सबबसे उत्पन्न होता है, यह सब सबबोंका नास करनेका रस्ता कोनसा है, और अभिमानसे क्या गेरलाभ होता है इतनी बातोंका विचार प्रथम करना चाहिये. फिर अभिमान का प्रतिपक्षी मृदुता अथवा नम्रतासे क्या लाभ है सो भी सोचना चाहिये.

अभिमान ८ प्रकारसे होता है:—

"जाति[१] लाभ[२] कूलै[३]श्वर्यं[४]। बल[५] रूप[६] तपः[७] श्रुतिः[८] ॥"

अर्थात्:—जाति, लाभ-कूल-ऐश्वर्य-बल-रुप-तप श्रुति: यह आठ कारणसें अभिमान होता है.

१. जातिमद:—मेरा जैसा जातिवंत कोन है? में ब्राह्मण हूं, क्षत्रीय हूं, शेठ हूं, पटेल हूं; ऐसा अभि-

मान करनेवाला दुसरे जन्ममें नीच जातिमें उत्पन्न होता है.

२. लाभमदः—मेरा जैसा लाभ उपार्जन करनेवाला कोन है? जहां जाता हूं तहां बस धन ही धन नीजर आता है. थोडी महिनतसे वहुत कमा सकता हूं. ऐसा अभिमान करनेवाला दुसरे जन्ममें निर्धन और भिक्षुक होता है.

३. कूलमदः—मेरा कूल जैसा पवित्र किंवा सुप्रसिद्ध कूल कीस्का है? मेरा दादा तो सयाजीरावका दीवान था; में तो वह परशुरामका कूलका हूं कि जो २१ वार नक्षत्री पृथ्वी करनेवाला था. ऐसा अभिमान करनेवालाको दुसरे जन्ममें कलंकित कूल मीलता है.

४. ऐश्वर्यमदः—में १०० आदमीका मालक हूं; मेरे हाथ नीचे इतने मनुष्य हैं; में धारुं सो कर सकता हूं; एकक्कु बुलाता हूं और दश जणे दोडके हाजर होते हैं. ऐसा अभिमान करनेवाला दुसरे जन्ममें अनाथ बनता है (जीस्का कोइ वालीवारस नहीं होता है और जो हजारोंकी लाचारी—खुशामद करके

पेट भरता है.)

५. बलमदः—मेरे सरीखे पराक्रम कोन कर सकते है? पांच दश मनुष्योंको तो में अकीला ही मार सकता हूं. ऐसा अभिमान करनेवाला बलहीन होता है.

६. रुपमदः—में कैसा फक्कड जवान हूं? भला भला भी मेरा रुपको देखकर आश्चर्य पाता है. ऐसा अभिमान करनेवाला कुरुप—अपंग होता है.

७. तपमदः—में बडा तपस्वी हूं.मुझे जो तपस्वी न कहे उस्को में देख लेउंगा.मेंने इतनी २ बडी तपस्या कीयी हैं और छोटे तप तो मेरी गीनती में भी नहीं हैं. ऐसा अभिमान करनेवाला अशक्त होता है.

८. श्रुतिमदः—में बडा ज्ञानी हूं;इतने २ शास्त्रों तो मेंने जीव्हाग्र कीये हैं. मेरी साथ चर्चा करनेवाला कोन है ? ऐसा अभिमान करनेवाला मूर्ख होता है.

दुनियामें यह ८ चीजों मद किंवा अभिमा-

नकी जनेता हैं. इस लिये यह ८ चीजोंका स्वरुप देखना चाहिये.

(१) जाति.

हे प्राणी! तूं कहता है कि मेरी मातापक्षकी जाति श्रेष्ठ है. परन्तु तूं विचार कर कि कीतनी कीतनी जाति होती हैं और इस्में तेरी जाति कोन गीनतीमं है ?

सब मीलके ८४,००,००,० चोर्यासी लाख जाति होती हैं. ७ लाख पृथ्विकायकी जाति; ७ लाख अपकाय (पानीके जीवों) की जाति; ७ लाख तेउ काय (अग्निके जीवों) की जाति; ७ लाख वाउकाय (हवाके जीवों) की जाति; २४ लाख वनस्पातिकी जाति; २ लाख बेइन्द्रिय (कीडे आदिक) जीवोंकी जाति; २ लाख तेंद्रिय (कीडी आदिक) जीवोंकी जाति; २ लाख चौरिंद्रिय (मखी आदिक) जीवोंकी जाति; ४ लाख तिर्यंच पचेन्द्रिय (पशु) की जाति; ४ लाख नर्कके जीवोंकी जाति; ४ लाख देवताके जीवकी जाति; १४ लाख मनुष्यकी जाति. सब मीलके ८४ लाख जाति.

इस ८४ लाख जातिमें अनंत बार तैंने जन्म लीया है. नर्कका कीडा भी तूं बन चुका है और देवलोकका देव भी बन चुका है. तो अब बनीया–ब्राह्मण–क्षत्रीय होनेसे अभिमान क्या करता? विचार करना चाहिये कि, वोही जीव तूं था कि जो एक वख्तपर भंगी होकर झाड्डु नीकालता था, बहुत लोगों तेरी तर्फ तर्जनी अंगुली बताते थे, सबकी गाली तूं खाता था: वोही जीव तूं आज जातिका अभिमान कर रहा है सो कैसी मूर्खता है?

ब्राह्मणीके उदरसे जन्म पाया तो इस्में क्या पराक्रम कीया? क्या कीसीको परमार्थ कीया?

उंच जाति मीला तो उस्का सदुपयोग करना चाहिये कि जिस्सें फीर कभी नीच जातिमें जन्म लेना न होवे.

(२) कूल.

हे प्राणी! तूं कहता है कि मेरा पितापक्षका कूल श्रेष्ठ है; परन्तु विचार कर कि कीतने कीतने कूल होते हैं और इस्में तेरा कूल कोन बिसातमें है?

सब मीलके १,९७,५०,००,० कोडी कूल हैं. कोडी १२ लाख कूल पृथ्विकायके,७ लाख अपकायके,३ लाख तेउकायके, ७ लाख वायु कायके, २८ लाख वनस्पतिके, ७ लाख बे इन्द्रियके, ८ लाख तेंद्रियके, ९ लाख चौरिन्द्रियके, १२॥ लाख जलचर (पाणीमें रहनेवाले) के, १० लाख स्थलचर (पृथ्वीपे चलनेवाले) के, १२ लाख खेचर (आकाशमें उडनेवाले पक्षी) के, १० लाख उरपर (पेटसे चलनेवाले) के, ९ लाख भूजपर (हाथोंसे चलनेवाले) के, २५ लाख नर्कके, २६ लाख देवताके और १२ लाख मनुष्यके: मील कर १,९७,५०,००,०कोडी कूल हुए. यह सब कूलमें अनेक वार तेंने जन्म लीया है. तो अब उंच कूलका अभिमान क्या करता है?

(३) लाभ.

हे प्राणी ! तूं हजार किंवा लाख दश लाखका लाभसे अभिमान क्या करता है? देख, चक्रवर्तीकी कीतनी आवक थी? परन्तु उस्को भी अनुभवसे मालूम हुआ कि धनसे क्या हुआ? वह तो सब लक्ष्मीको छोडकर त्यागी हो गया. अब तूं थोडासा धन पाया तो इस्में क्या अभिमान करता है?

धन कुछ हमेश तेरी पास रहनेवाला नहीं है. और धनकी प्राप्ति तो नीच वर्णके लोग भी बहुत करते हैं; तूं कुछ नवाइ नहीं करता है.

(४) ऐश्वर्य.

राजा रावणका ऐश्वर्य सुप्रसिद्ध है. एक कविने कहा है किः—

असी क्रोड गज बंध्र, अर्ब दश तुरी तुखारा;
क्षत्री क्रोड पचास, पायदल लील अठारा;
सोलसें सामंत, एक सहस्र पंदर राजा;
सर्व धरत है शंख, बजत इंद्रापुर बाजा;
टोंचे सीस तस कागडा, एक दिन ऐसों भयो,
नरनरिन्द्र मत कर गर्व, कहो रावण कौण दिश गयो?

जैन मतानुसार रावणकी पास २१ लाख हाथी, २१ लाख घोडे, २१ लाख रथ, २४ कोटी पायदल और बिभिषन और कुंभकर्ण जैसे मंत्र जाननेवाले भाइ थे और इंद्रजीत और मेघवाहन जैसे पुत्र थे तो भी अभिमानसे उस्का विनाश हुआ; तो तेरा ऐश्वर्य कोन गीनतीमें है ?

(५) बल.

हे प्राणी ! तुं बलका अभिमान करता है. परन्तु देख ! तींर्थकरका बल कीतना है ? २००० सिंहका बल एक अष्टापदमें होता है, १०,००,००,० अष्टापदका बल एक बलदेवमें, २ बलदेवका बल एक वासुदेवमें,२ वासुदेवका बल १ चक्रवर्तीमें, क्रोड चक्रवर्तीका बल एक देवतामें, क्रोड देवताका बल एक इन्द्रमें, और अनंत इन्द्र भी इकठे हो के एक तीर्थंकरकी चिटी अंगुली नमानेके लिये समर्थ नहीं हैं! (ऐसा ग्रंथमें लीखा है.) अब विचार कि यह सबके मुकाबलेमें तूं कोन मात्र है? इस जमानेमें भी एक एक मल्ल (कुस्तीबाज) ऐसा है कि जो१० गाउ तक दोडकर जा सक्ता है, १०० मल्लको हठाता है, २५ आदमीका बोजा उठा सकता है : उस्की पास तेरा बल कोन मात्र है ?

(६) रुप.

यह गंदी कायाका अभिमान क्या करना ? बिचारना चाहिये कि इस शरीरमें साडेतीन क्रोड रोम हैं, इन प्रत्येकमें पौणे दो दो रोगों रहे हैं. इसी मुजब

यह मनुष्यशरीर रोगसे भरपूर है. सनत कुमार चक्री स्ना-
न करता था उस वख्त देव उस्का रुप देख कर चकीत
हुआ. तब राजाने गर्व करके कहा कि 'अब तो मे-
रा शरीर तैलादिसे वेष्टीत है; परंतु जब में वस्त्रालंकार
पहरके गादीपर जा बेठुं तब मेरा रुप देखना'. इत-
ना अभिमानसे उस्के शरीरमें रोगका जन्म हुआ
जीस्के प्रभावसे खून पडने लगा और शरीर बद-
सीकल हो गया. यह रुपमदका फल देखीये !

स्त्रीको तो रुपमद अल्प मात्र भी बहुत नु-
कशानकारक है. कहा है कि 'रुपवती भार्या श-
त्रु' अर्थात् रुपवती स्त्रीका सतीत्व झुंटनेके लिये ब-
हुत ही दुष्ट लोग प्रयत्न कर रहे हैं. इस लिये रुप-
वती स्त्रीका पति सुखसे बेठ सकता नहीं है. इस
लिये सुशील स्त्रीको लाजीम है कि, रुपका मद क-
रना तो दूर रहा परन्तु रुपको जाहीर भी नहीं कर-
ना अर्थात् रुप छूपाना.

(७) तप.

आजकलका मनुष्यका शरीर कमताकद
होनेसे अगाउकी माफीक तप हो भी नहीं स-

कता है. तो तपका अभिमान क्या करना ? श्री वीर भगवानने चौमासी (चार चार मासकी) नव बख्त तपस्या कीयी; छ मासकी एक बख्त तपस्या कीयी, तेरह बोलका अभिग्रह लिया कि जो छ मासमें पांच दीन कमी थे तब फला; दो मासकी ६ बख्त, १॥ मासकी १२ बख्त, १५ दीनकी ७२ बख्त, ३ मासकी २ बख्त, २॥ मासकी २ बख्त तपस्या कीयी, और भद्रपडिमा—महाभद्रपडिमा—शिवभद्रपडिमा १६—१६ दीनकी और बारहवी भिक्षुकी पडिमा तेला करके बार बख्त की और २२९ बेले (छठ). सब मीलके १२॥ वर्ष और १५ दिनमें शीर्फ ३४९ दिन आहार लिया.इतनी सख्त तपस्या करके भी एक तील मात्र भी गर्व नहीं किया और नम्रता और क्षमाका सागर बन रहा. गोसालाने उस्के शिष्यको जला दीया तो भी अपनी तपस्याका प्रभावसे उस्को कुछ नुकशान नहीं कीया.

जो लोग तपस्या करके महिमापूजाकी वांच्छा करते हैं उस्को उत्नाही फल मीलता है. वांच्छायुक्त तपसें निर्जरा होनी मुश्कील है. इस अमूल्य तप गर्व किंवा महीमाकी वांच्छाका जुज लाभके

लिये गुमाना नहीं चाहिये.

तपका प्रभावसे कीसीको आशिर्वाद देना, कीसीको शाप (श्राप) देना यह भी कोडी के लिये हजारो द्रव्यका व्यय करने जैसा है.

(८) श्रुति.

गणधर देवको 'उपनेवा' [उत्पन्न होने वालें पदार्थ], 'विगनेवा' [विणसनेवालें पदार्थ] और 'धूवेवा' [शाश्वते पदार्थ] यह तीनो ही पदका ज्ञान था. उस्में वो चौद पूर्वका ज्ञान (कि जो १६३८३ हाथी डुबे इत्नी साहिसे लिखाय) उसे कंठाग्र करते थे. ऐसे त्रिपदी विद्याके धारककी बुद्धि आगे आजकलके मनुष्यकी बुद्धि कोन गिनती में है ?

और भी देखीये ! आजकल तत्वज्ञानका तो शोख बहुत थोडे ही मनुष्योंको होता है. जीधर देखो उधर वार्त्ता-नवलकथा-दंतकथा-ढालों-स्तवन-सझाय किंवा दुहा चौपाइका शोखीन जनों दृष्टिमें आते हैं. ऐसे आदमीकु क्या पंडीत कहा जावे ?

यह बडी आश्चर्यकी बात है कि जो चीजसें अंधकारका नाश होता है वोही चीजसें अंधकारकी वृद्धि भी होती है ! ज्ञान ऐसी चीज है कि जीस्से सब प्रकारकी अज्ञानता और तज्जन्य अभिमानका नास होता है. इस्के बदल, ज्ञानका ही अभिमान होवे ते। क्या यह आश्चर्यकी बात नहीं है ? सब प्रकारके गर्वमें बडा दुष्ट गर्व ज्ञानका है. ज्ञानका गर्वसे मनुष्य पशुत्वसे भी ज्यादे खराब काम करते हैं. पंडीत अभिमानी होवे तो कभी उस्की भूल हो जावे तो भी अभिमानके लिये भूल कबुल नहीं करता है. परन्तु ‘ गध्धेका पूंछ पकडा सो ही पकडा ’ इसी मुजब झूठको भी सच्चा मनानेके लिये प्रपंच करता है और भोले लोगोंकु मिथ्यात्वकी खाडमें होमता है.

इस बातको बराबर समझ लेना, कि कोइ आदमी संस्कृत-उर्दु-इंग्लीश-लेटीन-ग्रीक और और पचास भाषा पढा हुआ होने पर भी जो उस्की पंडीताइका गर्व करे तो वो पंडीत नहीं है परन्तु ज्ञान रखनेकी हाडमांसकी थेली है, कि जिस्में २५-५०-७५ वर्ष तक ज्ञान बंध किया जाता है और

पीछे काष्टमें जला जाता है. बंध कियी हूइ थेली-का द्रव्य कीसीको कामका नहीं है और अभिमा-नीका ज्ञान अपनको भी लाभकारक नहीं होता है तो अन्यजनोंकी तो बात ही क्या करनी ?

अभिमानी मनुष्य अपने घर-कुटुम्ब-शरीर-लक्ष्मीको तृण बराबर गीनता है; अर्थात् अभिमा-नमें पड कर घरको पाडतोड भव्य महेल बनानेके लिये कटिबद्ध होता है; एक रुपैयाके काममें हझा-रो रुपैयेका खर्च कर देता है; लग्नादि प्रसंगमें शी-र्फ मान के ही लिये दारु छोडनेमें—रंडी नचानेमें-बाजे बजानेमें इत्यादिमें हझारो रुपैयेका व्यय कर देता है. बडे बडे लोगोंका ठाठ माठ देख कर वह भी ऐसा ठाठ करता है और करज (देवा) करके मृत्यु पर्यंत अन्यका दास बन रहता है.

मान और अभिमानको जीतनेसे नम्रताकी प्राप्ति होती है, की जीससे और बहुत ही गुणोंका लाभ होता है. श्री " उत्तराध्ययन " सूत्रमें कहा है किः—

माण विजएणं भंते जीव किं जणयइ ।

माण विजएणं मद्दवं जणयइ ॥

अर्थात्ः–(शिष्यने पूछा कि,) हे भगवन्! मानको जीतनेसे कोन गुनकी प्राप्ति होती है ? (गुरुने कहा कि,) मृदुता अथवा नम्रता-विनय गुणकी प्राप्ति होती है.

इस विनय गुण ही धर्मका मूल है. मूल मजबूत होगा तो वृक्ष और इमारतकी जींदगी लंबी होगी. भगवानने कहा है कि,

विणया उ नाणं नाणाउ दंशण ।
दंशणाउ चरणं चरणं हुंती मोख्खो॥

अर्थात्–विनयसे ज्ञान आता है; ज्ञानसे जीवाजीवका जाणपणा हो के सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है; समकिती जीव चारित्र ग्रहण कर सकता है; और चारित्रसे मोक्ष मीलती है. इस लिये सबमें विनय गुन अव्वल दरज्जाका है. जिसको ज्ञानकी इच्छा हो, समकितकी इच्छा हो, सर्वसें वैरभाव मीटानेकी इच्छा हो, निर्मल यशकी इच्छा हो उस्को लाजिम है कि विनय और नम्रता अवश्य ही धारण करना.

जो गुणीजन हैं उस्का गुणग्राम करके उन्के गुण दिपावो; कायासें उन्को साता उपजावो; 'ऐसे गुण मेरमें कब आयंगे ?' ऐसी भावना भावो.

नम्रता है सो महत्वका लक्षण है. छोटे लोगमें नम्रता नहीं होती है, जीतनी वडेमें होती है. पांच रुपैयेका सिपाइ मीजाज करता है और गाली नीकालता है परन्तु गवर्नर और वडा शाहुकार तो हमेश ही नम्र होते हैं और मधुर वचन वोलते हैं. कहा है किः—

नमे सो आंवा-आंवली, नमे सो दाडम द्राख;
एरंड विचारा क्या नमे, जिनकी ओछी साख.*

मराठीमें कहा जाता है कि, "श्रेष्ठ लोका तें नम्रपणे सेवी' अर्थात् वडा आदमी वह है कि जो नम्रपणा धारण करता है.

वडा होनेका तो सब चाहते हैं; परन्तु वडा होना मुश्कील है. देखीये ! खानेका 'वडा' वनाते

---

* नमन्ति सफला वृक्षाः। नमन्ति सज्जना जना ॥
मूर्ख च शुष्क काष्ठ च न नमन्ति कदाचन ॥

हैं उस्को कीतने कष्ट सहन करने पडते है ?

प्रथम थे वो मर्द, मर्द के नार के'वाये,
कर गंगाका स्नान, शिलासे जुद्ध करायेः
हुवे समुद्र पार, घाव बरछीके खाये,
इतने कष्ट जिन सहे, तब वो 'बडा' पद पाये!

सत्य है कि, कभी कभी अच्छे आदमीकी नम्रताका लाभ ले कर दुष्ट आदमी नुकशान पहुंचाते हैं; परन्तु तो भीं जो खरेखर बडा है वो तो कभी नम्रता छोडता नहीं है. वो तो समझता है कि-

वडे को दुःख पूर है, छोटेसे दुःख दूरः
तारा तो न्यारा रहे, ग्रहे चंद्र और सूर.

ग्रहण चंद्र सूर्यको होता है, कुछ तारे को नहीं होता है. परन्तु प्रशंसा किस्की की जाती है? चंद्र-सूर्यकी किंवा तारेकी ?

जो नम्र आदमी है वो सबका मित्र बन रहता है; क्युं की उस्की जबान सर्वदा मीठी होती है. उस्का पोशाक, चलनेकी रीत, वाणी, सब निर्दंभी होनेसे उस्की ईर्षा करनेका कारन किसीकु नहीं मीलता है. परन्तु जो ढोंगी है उस्के शत्रु

बहुत ही होते हैं और वह सबका बूरा ही चाहता है; यद्यपि बूरा तो खुदका ही होता है.

"Pride goeth before destruction and a haughty spirit before a fall".

अर्थात्—विनाशके आगे अहंकार चलता है और निपात के आगे मगरूरी चलती है.

डॉ. यंग ने सच्च कहा है कि—

Can Pride and Sensuality rejoice?
From purity of thought all pleasures spring,
And from a humble spirit all our peace.

भावार्थः—क्या, मगरूरी और विषयाशक्ति वाले मनुष्यको कभी हर्ष हो शकता है? कभी नहीं. आनंदका झराका मूल विचारशुद्धिमें है और शांतिका झराका मूल नम्रतामें है.

जीस्की पास नम्रता है वो कभी आत्मश्लाघा नहीं करता है. आत्मश्लाघा करनेवाले मगरूर आदमी कभी अपनी भूल नहीं देख सकते हैं. "मॉन्डर' ने कहा है किः—

"Humility is the foundation of every virtue"
"हरएक सद्गुणका पाया नम्रता है" और-

"Modesty is not only an ornament but a shield"
" सभ्यता अलंकार और ढाल दोनुका काम करती है." और—

"Men's merit rise in proportion to their modesty"
" ज्युं ज्युं मनुष्य नम्र होता है त्युं त्युं उस्की लायकात बढती है."

आखीरमें एक असरकारक दृष्टांतसे यह प्रकरण खतम किया जायगा. एक नदी के तटपे ओक नामका बडा भारी वृक्ष था, और सेंकडो रामसर (कूंचा—सरखट) थे. एक रोज पवन के तोफानसे वह ओकका वृक्ष मूलसे टूट पडा और नदीमें खेंचाता ही चला. चलते चलते उस्की दृष्टि रामसर की तर्फ गइ. और उन सब रामसरोंको टटार देख कर वह वृक्ष बोला कि, 'अरे क्षुद्रों! क्या तुम अब तक खडे हो?' नम्र रामसरोंने जवाब दिया कि, 'जी हां! महरबान! जब पवनका झपाटा आता था तब हम सब नीचे नम जाते थे और पवन हमारे शिर पर हो कर सीधा चला जाता था और जिस्को नम जानेका नहीं आता था ऐसे वृक्षोंका नाश करने के लिये दौड जाता था!"

प्रकरण ५.

लाघव—लघुता–निर्ममत्व.

As a man maketh his *train* longer, he makes his *wings* shorter—बेकन

ज्यों ज्यों भींजे कामली विशेष त्यों त्यों भारी होत,
आगेही 'किसन' याते कीजिये उपाउरे

*　　*　　*　　*

एतो कार बार भार लेके कैसे पावे पार,
'किसन' उतार डार भार सिर परसो.

किसनदासजी.

मनुष्य कहता है कि 'मुझे सुख चाहिये;
दुःख मुजसे दूर हो.' परन्तु जब तक उस्के शरीर

पर जबरा भार है—जब तक स्त्री-पुत्र-पिता-बंधु-लक्ष्मी आदिका भार है तब तक वह किस तरहसे सुखसे बैठ शके ? और ज्यों ज्यों कामली विशेष भींजाती है त्यों त्यों उस्का भार ज्यादे होता है, और उस्को उठानेमें ज्यादे तकलिफ होती है.

अव्वल तो इस संसारसागर है ही दुस्तर अर्थात् तरनेके लिये मुश्कील; और उस्में तरनेवाला मनुष्य शिर पर बोजा रख्खे तो उस्की मुशीबत बढे इस्में क्या आश्चर्य ? जो थोडे बजनवाला होगा उस्को थोडी तकलीफ होती है और जीस्की पास ज्यादे बोजा है उस्को बहुत तकलीफ होती है; कोइ कोइ तो डूब भी मरते हैं. 'राजेश्री सो नर्केश्री' कहा जाता है इस्का यह ही सबब है. राजाका शीरपे कुटुम्ब, प्रजा, राज्य आदिका बहुत ही बोजा है उस्के लिये वह संसारसागरसें तर सकता नहीं है; परन्तु डूब कर नर्कतलमें जाता है.

संसारसागरमें तरती वख्त मनुष्य जो जो चीजको देखते है उन सब चीजोंकी इच्छा करता है. द्रव्य देखा तो उस्को पकडके शिर पर रखनेके

लिये दौडता है; घर देखा तो उस्को भी लेनेके लिये दौडता है, सुंदरी देखी तो उस्को भी गोदमें लेता है; पुत्र-मित्र आदि सबकी सब चीजों लेने के लिये दौडता है. कोइ भी चीज ऐसी नहीं है कि जिस्को वह नहीं मंगता है; परन्तु बिचारता नहीं है कि, "इतना बोजा में कीस तराहसे उठा शकूंगा? और वह बोजा मेरी गतिको मंद करेगा और कभी मुजे डुबा भी देगा' ऐसा तो बिचार ही नहीं करता है. एक मूर्ख की बात इंग्लंड देशमें कही जाती है. वह मूर्ख मुसाफरी के लिये चला तब खुरशी, टेबल, प्याला, वस्त्र, कागज, पुस्तक, बरतन, बत्ती, दुवात-कलम, बीछाना आदि सब चीजों लेकर चला. रस्तेमें कभी उंदर होगा तो क्या करना? उस्को पकडनेके लिये उंदरिया चाहिये! मर जावे तो क्या करे? कबरका साहित्य चाहिये! ऐसा बिचार आनेसे ऐसी ऐसी चीजों भी लेकर चला! इससे उस्की पास इतना बोजा हुआ की मुसाफरी कर सका ही नहीं और सब लोग उन्की हांसी करने लगे.

'सीनेका' (Seneca) ने सच्च कहा है कि:—

"How often do we labour for that which satisfieth not? More than we *use* is more than we *need* and only a burden to the bearer We most of us give ourselves an immense amount of *useless trouble,* and encumber ourselves, as it were, on the journey of life with a *dead weight* of *unnecessary baggage*"

अर्थात्—"जो चीज खरेखर कामकी नहीं है वह शीर्फ बोजा रुप है. बहुत मनुष्यों निष्प्रयोजन तकलीफ लेते हैं और निरर्थक बोजा जींदगीकी मुसाफरीमें उठाते हैं."

जीतने द्रज्जे बोजा कमती कीया जाता है इतने द्रज्जे मुसाफरी सुख रुप होती है.

अब विचारनेका यह है कि मनुष्यमूसाफीर के शिरपे कोन कोनसा बोजा है?

यह बोजा दो प्रकारका होता है: (१) बाह्य; और (२) अभ्यंतर.

में पहीला बाह्य बोजाका स्वरुप बताउंगा. बाह्य बोजाकी २ चीजका स्वरुप प्रथक् प्रथक् कहा जायगा. (१) लक्ष्मी, (२) स्त्री आदि स्वजन.

लक्ष्मी.

जिस्की पास ज्यादे लक्ष्मी है उस्को चिंता भी ज्यादे है. कहा है कि 'संपत तहां विपत्त'.श्रीमंतकी तर्फ दृष्टि कर लो.अनेक देशदेशावरोमें उस्की दुकानों चल रही हैं,अनेक तराहके व्यापार होता है जिस्में लेणा —देणा, तेजी—मंदी, नफा—नुकसान, सबकी फीकर वह मालीकको होती है. हायरे! मेरा धन कोइ खा जायगा! दुकान बैठ जायगी! झाझ डूब जायगा! तेजी मंदीसे नुकसान हो जायगा! बापदादाका नामको दीवालासे बट्टा लग जायगा: ऐसी ऐसी चिंताओंमें वह श्रीमंत दिवस और रात्री निर्गमन करता है; घडीभर सुखसे सोता नहीं है. कीतनेक तो जींदगी पर्यंत धन जमीनमें दाटके उस्पे बीछाना करके सो रहते हैं और बिनपगार चौकीदारकी माफीक उस धनका रक्षण करते हैं; और मरके भी सर्प हो कर चौकी करते हैं. अब देखिये! लक्ष्मीका बोजा जीस्की पास है वो कीस तरहसे समुद्रपार जा सकेगा?

स्त्री आदि स्वजन.

जिनको ज्यादा कुटुम्ब है उनको ज्यादा वि-

टंब है. स्त्रीको अलंकार चहीता है, लडकेको वस्त्र चहीते हैं, भगिनीका लग्न करनेका है, पुत्रीको उस्का स्वसूपक्षके जनोंकी साथ टंटा चलता है उस्को समझानेका है ः ऐसी ऐसी सेंकडो तराहकी जंजाल लगी रहती है. इस लिये धंधा-रोजगार, ज्ञान-ध्यान आदिमें चित्त बराबर नहीं लगता है.

इतने पर भी स्त्री-पुत्र-मित्र निमकहलाल नहीं होते हैं. दंर्दमें, निर्धनतामें, चिंतामें कोइ भाग नहीं लेते है. मूर्ख मनुष्य समझता है कि मेरी स्त्री, मेरा मित्र, मेरा पुत्र, मेरा पिता ः परन्तु कोइ कीसीका नहीं है. सब स्वार्थके लिये लग रहे हैं. जब स्वार्थ नहीं सरता है तब कोइ कीसीकी पास भी नहीं आता है. रत्नेश्वर कविने सच्च कहा है किः—

को नथी शठ ! कुटुंब अर्थनुं सर्व को सुख सगुंज गर्थनुं,
पूर्व जन्म कृत भोग दोष त्यां, वैर प्रीति सहु कोइ पोषतां.

इस विषयमें एक दृष्टांत बहुत हितकारक हैः—

कोइ एक नगरका राजाकी पास एक बडा चतुर मंत्री था. वह मंत्रीके तीन मित्र थे. पहीला मित्र उस्को बहुत प्रिय था. खाना—पीना—फीरना

सब काम उस्की साथ ही करता था. उस्को बहुत दाम देकर और हर तराहकी मदद दे कर प्रसन्न रखता था. दोनु मित्र हर हमेश साथ ही रहते थे इस लिये उस्का नाम 'नित्यमित्र' रखा गया था.

दुसरा मित्र होली-दीवाली आदिक पर्वके रोज आता जाता था, इस लिये उस्का नाम 'पर्व मित्र' रखा गया था. वो भी जब आता तब मंत्री उस्को धन-वस्त्र-अलंकार-भोजन-मानसन्माना-दिसे संतुष्ट करता था.

तीसरा मित्रका नाम 'जुहार मित्र' रखा गया था; क्युंकि वह एक दीन मंत्रीको रस्तामें मील गया था और शीर्फ 'जुहार' करनेसे मीत्र हो गया था.

एक रोज राजाजी उस मंत्रीसे कोपायमान हो गये और सीपाइको हुकम फरमाया कि, मंत्रीजीको मार डालो. मंत्री समझा कि जो में कोइ मित्रके घर जा कर मेरा शरीरको छुपाउंगा तो बच जाउंगा. इस लिये दौड कर 'नित्यमित्र' की पास गया. तो उस्को भयभीत देख कर मित्र कारन पुछने

लगा. मंत्रीने कहा कि, राजाजी मेरेपर कोपायमान हुए है इस लिये तूं मुझे बचाओ. मित्र क्रोध करके बोला कि, अये कमबख्त! राजाका अपराध करके मेरी पास आया है? खबरदार, मेरे घरमें पांव देगा तो मेरा सरीखा बूरा कोइ नहीं है." और बात भी सच्च है कि जो नीमकहराम होता है उस से बूरा जगतमें कोइ होता ही नहीं है.

मंत्री बिचारा ठंडागार जैसा हो गया. उधरसे दौडकर ' पर्वमित्र ' की पास गया. उस्को दूरसे देखतें ही वह मित्र मंत्रीका सन्मानके लिये दौड आया और बोलने लगा कि, भाइजी! आज मेरा धन भाग्य कि मेरे घरकु आपका पधारनेका हुआ. मेरे लायक कोइ कामकाज फरमाना जी! मंत्रीने कहा कि, भाइ! कामकाज तो कुछ है ही नहीं, परन्तु राजाकी शिक्षासे बचानेके लिये मुझे तेरा घरमें गुप्त रखेगा तो बडा भारी उपकार होगा. तब मित्र कहने लगा कि, अफसोस की यह कार्य में नहीं कर सकता हूं. मैं गरीब हूं और राजा इस बातको जाननेसे मेरा घरबार लूट लेवे तो मैं क्या करुं?

परन्तु यदि आपकु सो-दोसो रुपैयेकी जरुरत होवे तो देनेकु मैं तैयार हूं.

अब तो मंत्रीजी निराश हो गया. अब मरनेके लिये तैयार हो गया. इतनेमें दूरसे 'जुहार मित्र' आता था उस्पे दृष्टि गइ. मंत्रीको गभराया हुआ देख कर वह मित्र दौड कर आया और हाथ पकड कर घरमें ले गया. ठंडा जल और मुखवास आदि दे कर खुश खबर पूछने लगा. पीछे चिंताका सबब भी पूछा. जब उस्ने सब हेवाल कह दीया तब मित्र बोला कि, मेरे परमाप्रिय भाइ! आप बीलकूल डरो मत. मेरे घरमें आप आनंदसे रहो. राजाजी तो भोले हैं; दो दीन पीछे पस्तायेंगे और आपकु फीर बुलालेंगे. इस मुजब कहके उस्को घरमें रखा और उस्की अच्छी तराहसे बरदास करने लगा.

एक रोज कीसी मुश्कील काममें सलाह के लिये राजाको मंत्रीकी जरुरत पडी. इस लिये मंत्रीको ढूंढने के लिये गांव गांवमें आदमी भेजें. तब मंत्री आप ही राजाकी पास जा कर सलाम करके खडा रहा. और राजाने उस्को और उस्के सबे

मित्रको बहुत द्रव्य दे कर अपनी पास रख लिया.

बस ! बात तो इधर खतम हुई. यह एक द्रव्य दृष्टांत है परन्तु इस्का परमार्थ समझने 'योग्य है. राजा सो कर्म, मंत्री सो चेतन, 'सदा मित्र' सो शरीर, 'पर्व मित्र' सो स्वजन परिवार, और 'जुहार मित्र' सो गुरु और धर्म. राजाका कोप हुआ अर्थात् अशुभ कर्मका उदय हुआ तब 'सदा मित्र' अर्थात् शरीर भी बदल गया. (जो केसको तेल फुलेल लगाकर काले भमर जैसे बनाये थे वो पीले किंवा श्वेत हो गये; जीन आंखोंको अंजनसे आकर्षणीय बनाइ थी वो अशोभनीक हो गइ; दांत पडने लगे, शरीर कंपने लगा, कान बधीर हो गये, जठर मंद हो गया. इत्यादि) देखिये ! जीन शरीरको अन्न–वस्त्र–सुगंधि आदिसे हर हमेश तृप्त रखा जाता था वोही शरीर कैसा दगा देता है ? जिस्का पालन के लिये बहुत ही छकायके जीवोंकी हत्या करी, बहुत ही मनुष्योंसे टंटा कीया, बहुत ही प्रकारकी तकलीफ उठाइ, वह शरीर भी अशुभ कर्मका उदयकी बख्त तेरे कुछ काममें नहीं आता है.

दुसरा जो 'पर्वीमित्र' अर्थात् स्त्री-पुत्र-स्वजन आदि हैं वो भी खाने के लिये तैयार होते हैं परन्तु कामकी बख्त लाचार हो जाते हैं. मैं क्या करुं ? बस ! इतना ही कह देता है. माता पिताको धन कमा के देनेसे वो संतुष्ट होते हैं और कहेंगे कि मेरा पुत्र रत्न जैसा है. परन्तु पुत्र अशक्त होगा तो वो कहेंगे कि, ऐसा पुत्रसे पथ्थर भला ! ऐसे हि जो माबापकी पास धन होता है उस्की सेवा चाकरी करनेके लिये पुत्र हमेश तैयार होता है परन्तु जो निर्धन है उस्के पुत्र उस्की खबर भी नहीं पूछता है और कहता है कि इस बुढी वा बुढा को मृत्यु क्यों नहीं आता है ? कभी कभी पिताका द्रव्य लेनेके लिये उस्को जहर भी दिया जाता है, कभी कोर्टमें तकरार भी की जाती है.

पतिकी पास धन—तन आदिका जोर होता है तो स्त्री उन्की साथ प्रीति करती है. परन्तु निर्धन किंवा निर्बल पतिको उस्की स्त्री हरहमेश सताती है, अपमान करती है और कोइ कोइ दुष्टा तो व्यभिचार भी सेवती है. बहुत ही स्त्रीयों उदरपोषणके लिये पतिको सरकारमें दोरती है;कीतनीक

तो बिषसे पतिको गतःप्राण भी करती है.

पति भी रुपवती स्त्रीको चाहता है; स्त्री बद-शीकल होनेसे जार करता है;स्वपत्नीको दगा देता है. जो स्त्रीका पिता श्रीमंत होता है वह स्त्रीका पति उन्की साथ प्रेमसे रहता है; निर्धनकी पुत्रीका पति उन्की दरकार ही नहीं करता है. स्त्री हीणांगी होवे तो उस्का पति उस्का मृत्यु भी वांच्छता है.

द्रव्यके लिये पिता पुत्रीको बेचता है! बारह बर्षकी रुपवती कुसुम जैसी पुत्रीको ६० बर्षका बु-ढाको देता है. अब देखिये! पिता कीस्का और पुत्री कीस्की? बस! स्वार्थ ही की सगाइ है.

तीसरा 'जुहार मित्र' अर्थात् धर्म है सोही स-चा मित्र है. धर्म है सो विश्रामका स्थान है. अशु-भ कर्मका कोप होता है तब 'धर्म मित्र' हाथ पकड कर शरणा देता है. कोइ भी चीज ऐसी नहीं है कि जो 'धर्म मित्र' पाससे न मील शके. शास्त्रमें कहा है किः—

धर्मोऽयं धनवल्लभेषु धनदः कामार्थिनां कामदः
सौभाग्यार्थिषु तत्मदः किमपरः पुत्रार्थिनां पुत्रदः।

राज्यार्थिष्वपि राज्यदः किमथवा नाना विकल्पैर्नृणाम्
तत्किम् यन्न ददाति वाञ्छितफलं स्वर्गापवर्गावपि ॥

मतलब कि—धर्म है सो धनकी इच्छावाला को धन देता है. कामार्थीको काम, सौभाग्यका अर्थीको सौभाग्य, पुत्रार्थीको पुत्र, राज्यार्थिको राज्य देनेवाला धर्म ही है. मनुष्योंको जो नाना प्रकारकी इच्छा होती है वो सब तृप्त करनेवाला धर्म है. किं बहुना, प्राणी धर्मसे स्वर्ग और मोक्ष पर्यंत भी प्राप्त कर सकता है.

अंग्रेज कवि 'काउपर' न कहा है किः—

Religion! what treasures untold
Reside in that heavenly word—
More precious than silver or gold
Or all this earth can afford.

भांवार्थ इन्का यह है किः—धर्म! इस स्वर्गीय शब्दमें कीतना अकथ्य खजाना रहता है! सोना रुपा और पृथ्विकी सब चीजोंसे भी वह बहुत मूल्यवान है.

'धर्म मित्रके' सिवाय दुसरे दोनु मित्र कुछ का-

मका नहीं है. सुंदरदासजीने कहा है कि—

मेरी मेरी क्या करे मूर्ख ! तेरी कहे क्या हो गइ तेरी ?
जैसे बापदादा गया छोडके, तैसे ही तूं नर जायगा छोडी
मारेगा काल चपेट अचानक, होय-घडीमें राखकी ढेरी;
'सुंदर' ले चल रे कछू संगत, भूला कहे नर मेरी रे मेरी.

राजा नमीराजको जब दर्दकी उज्वल वेदना होने लगी तब उस्की प्राणप्रिय राज्ञीओं बहुत उपचार करनेकु लग गइ; परन्तु कुछ आराम नहीं हुआ. पट्टराज्ञीने जब उस्को चंदन लगाया तो थोडा बहोत अच्छा लगा, इस लिये सब राज्ञीओं चंदन घीसनेको लग गइ. सबके हाथके कंकणके अवाजसे राजाको और ज्यादे तकलीफ हुइ, इस लिये पट्टराज्ञीने सबको हुक्म कर दिया कि एक एक हाथमें एकसे ज्यादे कंकण मत रखो. ऐसे करनेसे राजाको जरा आराम हुआ. अब राजा बिचारनेकु लगा कि "हे जीव ! ज्यादे कंकण थे तब अवाज करते थे और मुझे भी दर्द करते थे. अब अकीला कंकण कुछ गरबड नहीं करता है. में भी अकीला आया था; परन्तु इन सब औरतों, प्रजाजनों और धन आदि की सोबत हो गइ तो अब दुःखी बना हूं.

इस शरीर भी मेरा नहीं है. मैं तो केवल अक्षय, अव्याबाध, अविनाशी चेतन हूं; और शरीर,लक्ष्मी आदिक सब परपुद्गल हैं. बस! इसी तराह भावना-में चड गया और आराम होनेसे साधु हो गया.

भाव बोजा.

नमीराजने जब तक शरीर-स्त्री-राज्य आदिमें मेरापणा माना अर्थात् मायामें लग रहा तब तक दुःख हुआ परन्तु जब मायाको छोड दी—जब उस 'भाव बोजा' को फेंक दिया तब उस्को आराम हो गया. क्रोध-मान-माया और लोभ चारु 'भाव बोजा' को जीतना कमती करोंगे उतना ही ज्यादे आराम होगा.

श्री आचारांगजी सूत्रमें कहा है किः—

उवसमेण हणे कोहं । माण मद्दवयी जिणो ।
मायं च अज्जव भावेणं । लोभो संतोसउ जीणो ॥

अर्थात्—क्रोधको क्षमासे, मानको विनयसे, मायाको सरलतासे और लोभको संतोपसे हटाओ.

बोजाको कमती करनेके लिये नीचेकी ३ चाबी अमूल्य हैंः—

(१) एगो मे सासउ अप्पा, नाण दंशण लखणं ।
सेसुहुमवायरा भावा, सव संजोग लखणं ॥

मैं अकीला हूं; मैं अर्थात् मेरी आत्मा शाश्वती है, इस्का लक्षण ज्ञान–दर्शन हैं, और कोइ नहीं है. जो बाह्य पदार्थ दिखनेमें आते हैं तथा जो सूक्ष्म पदार्थ हैं सब संयोगसे उत्पन्न होते हैं और वियोगसे विखर जाते हैं. तो फिर परपुद्गलका संयोग वियोगसे क्या मोहित होना?

(२) एगोह नत्थी मे कोइ, नाहु मनस केसइ ।
एवं दीणमन्नसं, अदीनं मन्न संचरे ॥

मैं अकीला हूं; मेरा कोइ नहीं है; मैं कीस्का नहीं हूं; ऐसा दीन मनसे अदीनपणे विचरे सो ही लाघवगुणका धणी है.

(३) आपा ज्यांही आपदा, चिंता ज्यांही सोग.
ज्ञान विना ए नवी मीटे, जालम मोटा रोग.

जब तक 'आपा' (ममत्व) है तबतक 'आपदा' भी है. परन्तु जब ज्ञान आता है तब वह जालम रोग– हमेशका भयंकर रोग दूर होता है.

इस पर थोडा विचार करना चाहिये. जब कोइ

अन्य जन मर जाता है तब मुझे दीलगीरी और दुःख नहीं होता है; परन्तु मेरा भाइ मरनेसे मुझे दुःख होता है; इस्का क्या सबब ? अन्य जनमें मुझे कुछ 'ममत्व' नहीं था, और में जिस्को भाइ कहता हूं उस्में 'ममत्व' था. तो अब प्रत्यक्ष समझा जाता है कि मुझे दुःख दनेवाला न तो मेरा भाइइ न तो कालदेव है परन्तु 'ममत्व' ही है.

और भी एक ज्यादे दृष्टांतसे विचार करना चाहिये. कोइ मनुष्य समुद्रमें स्नान करनेके लिये जाता है. वह जब डूबकी मारता है तब उस्के शरीरपे कीतना पानी हो जाता है? हझारो मन पानी होता है तो भी उस्को इस्का बजन नहीं लगता है. परन्तु जब वो बहार नीकल के वह जलमेंसे एक घडा पानी ले कर शिर पर रख चलेगा तब उस्को बोजा लगता है किंवा नहीं ? अपितु लगता ही है. इस्का सबब खुल्ला है कि, जब तक पानी पराया (समुद्रका) था तब तक बोजा नहीं था, जब उस्का मीट कर मेरा बनाया तब बोजा हो गया ! यह बोजा पानीका नहीं परन्तु ममत्वका ही है.

ऐसे हि, जगत्में जो जो चीजों है सब परपुद्-

गल हैं. वो कुछ आपकु दुःख नहीं कर सकती है पर-न्तु जब उसमें आप ममत्वका आरोप करोगे तब वह दुःखदायक ही बन जायगी.

सब मनुष्यों त्यागी नहीं बन सकते हैं. तो भी जो लोग संसारमें स्थित हो कर भी ममत्वका बोजा जी-तना कमी करे उतना उस्को सुख होता है.

नलिन्या च यथा नीरं भिन्नं तिष्ठति सर्वदा
अयमात्मा स्वभावेन देहे तिष्ठति सर्वदा ॥

जैसे पानीमें उत्पन्न होनेवाले कमल पानीसे भिन्न ही रहते हैं ऐसे ही आत्माको देहसे और सब पुद्गलोंसे भिन्न समझ कर संसारमें गति करना.

आनंदरूपं परमात्मतत्वं । समस्तसंकल्पविकल्पमुक्तं ।
स्वभावलीना निवसंति नित्यं । जानाति योगी स्वयमेव तत्वं

इस मुजब जो लोग कोइ चीजमें लुब्ध नहीं होते हैं वो आनंद रुप, परमात्म तत्व, संकल्प विकल्प रहित, स्व स्वभावमें मग्न, योगी माफीक बन रह-ते हैं.

प्रकरण ६.

सच—सत्य.

" सत्यात् नास्ति परो धर्मः "

सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमादितव्यम् । कुशलान्न प्रमादितव्यम् । भूत्यै न प्रमादितव्यम् । स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ॥ उपनिषद्

A noble heart doth teach a virtuous scorn
To scorn to owe a duty overlong
To scorn to be for benefits forborne,
To scorn to lie, to scorn to do a wrong,
To scorn to bear an injury in mind,
To scorn a freeborn heart slavelike to bind

Lady Elizabeth Carew

सत्य वचन और दीनता, परस्त्री मात समान;
उनको स्वर्ग जो न मीले, तो 'तुलसीदास' जमान !

प्राणी स्वभावसे—जन्मसे सत्यको चाहता है.

एक छोटा बालकको कोइ 'झूठा' कहेवे तो वो र-

इजाता है. कोइ बडा आदमीको झूठा कहेवे तो वो मारनेकु दोडता है अथवा तो अदालतमें फर्याद करता है. इससे समझा जाता है कि किसीको असत्य पसंद नहीं है; सब सत्य के रागी हैं.

मनुष्यकी बात तो दूर ही रहने दो; पशु पक्षीको भी सत्य प्रिय है. कीतनेक पशु पक्षी ऐसे हैं की जब उस्की जातमेंसे कोइ बूरा काम करता है तब सब इकठे होके उस्को शिक्षा पहुंचाते हैं.

इस तराह मनुष्य और पशु पक्षी सबको सत्य बचन और सत्कार्य ही पसंद हैं. इससे समझा जाता है कि सत्य है सो समाजका रक्षक है ("Truth is the very bond of Society")

सत्य है वो ही धर्म है. कोइ धर्म ऐसा नहीं है कि जो असत्यका उपदेश करे. सत्य वचन, सत्य बिचार, सत्य कार्य : उस्को ही धर्म कहते हैं. जैन लोग उस्को त्रियोग शुद्धि कहते हैं, कि जो धर्मका मूल है. अंग्रेज लोग उस्को CHARACTER (शुद्धवर्त्तन) बोलते हैं कि जिस्में वचन (Word) विचार (Thought) वर्तन (Deed): तिनोंकी शुद्धिका समावेश होता है. पारसी

लोग 'मनस्वी', 'गवस्नी' 'और' 'कनस्नी' तीनोका स-
मावेश सत्यमें करते हैं.

सब गुणोंमें प्रधान गुण 'सत्य' ही है. बिना सत्य, सब गुणों निरर्थक हैं, जैसे कि बिना कीकी चक्षु निरुपयोगी हैं. पंडीत जन दुनियामें मान पाते हैं, चतुर जन मान पाते हैं; परन्तु यदि वो पंडीत और चतुरमें सत्यका गुन न होवे तो वो गमारसे भी तुच्छ है. झींदगीमें, बुद्धिसे भी सत्य ज्यादे कामका है, और विद्धतासे इन्द्रियनिग्रह बहुत कामका है.

सर हेन्री टेलर सच्च कहता है कि, "सत्य है वोही डहापण है." सत्यसें मनुष्य शीघ्र ऊंची पद्धी नहीं पाता है परन्तु आस्ते आस्ते क्रमशः चडता है. इसी तराह चडने वाला मनुष्य पडता नहीं है. कभी कभी सच्चा मनुष्यको लालचों ललचाती हैं, कभी शत्रुओं सताते हैं, कभी निर्धनता आदि संकटों दुःख देते हैं परन्तु "सत्यात् पदं न प्रविचलन्ति धीराः" अर्थात् धीर पुरुष सत्यसें एक तील मात्र भी खीसता नहीं है. हरिश्चन्द्र, राम, सीता, दमयंती आदिके चरित्र सब धर्मके लोग जा-

नते हैं और उस्की प्रशंसा आज तक कर रहे हैं. उस्का यह ही सबब है कि वो लोग सत्यमें बराबर दृढ रहे थे.

सत्यमें शूरत्व—बहादूरी चहीती है; कुछ कायरपणाका काम नहीं है. सत्य पहीला तो मनुष्यकु डराता है और झूठ अव्वलमें मोहनीय दीखता है. जो बहादूर नर होगा वोही झूठको छोड के—उस्की सब लालचोंमें ध्यान नहीं दे के सत्यको ग्रहण करेगा. सच्चा मनुष्यका मुखमें और शब्दमें शौर्य हैं. वो जीधर जाता है उधर सब मनुष्यमें उस्का ताप लगता है. सब उस्का कहना अंगिकार करते हैं. युरोपमें ल्युथर नामका धर्मसुधारक हुआ उस्का इतिहासकार कहता है कि 'ल्युथरका एक शब्द आधी लडाइ तुल्य था.' ऐसे ही महावीर देव और और धर्मके महापुरुषों जीधर जाते थे उधरके लोगों उन्को सन्मान देते थे और उस्का फरमान मुजब चलनेको कटीबद्ध हो जाते थे.

लश्कर, ज्ञाति, धर्म, शाला, सभा आदि संस्थाओंमें अग्रेसर मनुष्य सच्चा होता हैं तो सब म-

नुष्योंमें उस्की छाप पडती है और सब झूठको धि-
क्कारते ही चलते हैं. इसी तराह सचाइमें लोहचुंबक
(Magnet) का गुण है.

याद रहना चाहिये कि, सत्य शीर्फ वचनमें
ही न होना चाहिये, परन्तु मन—वचन और क्रिया
तिनोमें होना चाहिये. जब तीनो होगे तब सत्य क-
हा जाता है.सच्चा आदमी बूरा विचारको भी मगज-
में प्रवेश नहीं करने देता है. वो तो उससे भी डरता
रहता है, क्युं कि थीओसोफीका अभिप्राय ऐसा है
कि हरएक बिचार मगजमें जा कर जीवनमय आ-
कृति धारण करता है और इस्से भला वा बूरा कार्य
होता है.

जीस प्रजाका निपात—विनाश होने वाला है
वो प्रजा अव्वल तो बिचारमें भ्रष्ट होती है. देश
मरे किंवा जीवे उस्की इस्को कुछ दरकार नहीं रहती
है; कोइ अच्छा कहे और बूरा कहे उस्की दरकार
नहीं रहती है; सच और झूठमें कुछ तफावत दीखा
जाता नहीं है. पीछे वचनमें झूठ आता है. और
पीछे वर्तनमें भी झूठ आता है. बस! जब तीनो ही

असत्य इकट्ठे हुए तब क्या प्रजाकी अधोगति होनेमें कुछ डेरी लगती है ? देखिये ! इस भारतकी हाल कैसी है? व्यापारी लोग अपने लडकेको पढा-ते है कि बिना झूठ व्यापार हो ही नहीं सकता है; कामलदार लोग कहते हैं कि बिना रुसवत (लांच) गुजरान ही नहीं चल सकता है. ऐसे देशकी उन्न-ति कीस तराहसे हो सके ? जब तक सब भारत-वर्षीय प्रजा अपने पूर्वजोंकी सत्कीर्तिको याद कर सच बोलना-सच विचारना-और सच वर्तना नहीं सीखे तब तक इस देशकी उन्नति कभी नहीं होगी. सच्चा मनुष्य अम्मर है. तीर्थंकरों, गणधरों, तत्वज्ञा-नीओं ओर सतीयोंका शरीर हयात न होने पर भी उन सबके नाम और काम हयात हैं. उनके ना मसे ही मनुष्यों संसार सागरमें तैरते हैं.

सच सचको और झूठ झूठको पुष्टी देता है. एक बार सच कहनेकी मुशीबत दूर हो गई फीर दुसरी बार सच कहनेमें मुशीबत कमी होती है. ऐसे ही झूठ भी एक बार बोलनेसे दुसरी बार झूठ-की टेव (आदत) हो जाती है. दुष्ट शब्द, कार्य किंवा विचारको प्रथम प्रवेश ही नहीं करना देना चा-

हिये. अव्वलमें थोडी तकलीफ होगी परन्तु हमेशकी तकलीफ बच जायगी. पहीली तकलीफ तो तो पीछे सुख होता है.

अब मैं शब्द, विचार और कृत्यकी सच्चाइका प्रथक् प्रथक् विवेचन करुंगा.

शब्द (बचन).

सत्य बचन उस्को कहता हैं कि, (१) जो अतथ्य न हो, (२) जो अपथ्य न हो और (३)जो अप्रिय भी न हो.

(१) मेरी पास शीर्फ ५-७ सूत्रोंका ज्ञान होवे और में कहूं कि मेंने तो सब शास्त्रों पढे है, तो मेरा बोलना 'अतथ्य' है इस लिये झूठा है. जैसा होवे ऐसा ही कहेवे तो 'तथ्य' है, कमी जास्ती कहेवे तो अतथ्य है. (तथ्य=तथा रूप)

(२) पथ्य बचन उस्को कहता है कि जिस्से आखीरमें लाभ ही होगा. बिना हितका कहना अपथ्य है.

(३) जो बात सच्चा होने पर भी कहनेसे कीसीकी आत्माको दुःख होवे तो वह ' अप्रिय ' वचन होनेसे 'असत्य' गीना जाता है. अंधेको* अंधा कहनेसे वो बेचारेको क्लेश होता है. इस लिये कभी ऐसे जनोंकी साथ काम पडे तो युक्तिसे पूछना चाहिये कि भाइजी! आपकी आंखोकु कीतना वख्तसे दर्द हुआ है ?

बडे बडे पंडीत लोग भी ऐसे होते हैं कि जो सत्य कहते हैं तो भी असत्य जैसी असर करते हैं. ग़ुस्सामें आ कर तीव्र शब्दों या व्याजोक्तिसें सुननेवालाको कारी घा मारते हैं. ऐसे लोगकी सत्य फेलानेकी मुराद हांसल नहीं हो सकती है. तीर्थंकर देव हमेश सत्य ही बोलते थे, कभी लेश मात्र असत्य नहीं कहते थे; परन्तु खुबी यह है कि उन्के शब्दसें लुच्चे, चोर, दुष्ट, व्याभिचारी, अधर्मी आदमीओंको भी कभी क्लेष नहीं होता था, परन्तु

---

* श्री दश विकालिक सूत्रमें कहा है कि—

तहेवं काणं काणेत्ति । पण्डगं पण्डगे त्ति वा ॥
वाहिय वावि रोगिति । तेणं चोरे त्तिनोवए ॥

काणाको काणा, नपुंशकको नपुंशक, रोगीको रोगी और चोरको चोर न कहना

उन्को भी तीर्थंकर देवका बचन शीतलकारी होता था. अंग्रेज विद्वान 'कार्लाइल' ने कहा है कि "जो मनुष्य अपनी आत्मा और जबान पर काबु नहीं रख सकता है वो चाहे इतना पंडीत होवे तो भी कुछ स्मरणयोग्य काम नहीं कर सकता है."

"'पीथागोरास' कहता है कि' Be silent or say something better than silence" "मौन रहो अथवा चुपकोसे अच्छा होवे ऐसा कुछ बोलो." 'ज्यॉर्ज हर्बर्ट' कहता है कि "Speak fitly or be silent wisely" "देश कालादि देख कर बराबर बोलो किंवा शाणा होकर मौन रहो."

बेद भी पोकारता है कि "सत्यं ब्रूहि, प्रियं ब्रूहि" अर्थात सत्य ऐसा बोलो कि जो प्रिय भी होवे.

तो भी कभी समयानुसार सख्त होनेकी भी जरूरत पडती है. जो सत्यकोआशक है वो तो असत्यको सहन नहीं कर सके. क्रोध, निर्दयता, लोभ, मोह, मद, आदिका बिचार उस्की समक्ष आता है तब वह उस्की तर्फ क्रोध भी करता है. क्रोधादि दुर्गुणों को तो क्रोधसे ही हठाना चाहिये.

प्रियवादी विद्वज्जनों भी कभी कभी सख्त व-
चन बोलते हैं; उसका हेतुकी तर्फ दृष्टि रखनी चा-
हिये. पर्थीस (Perthis) कहता है कि:—

"I would have nothing to do with the man who cannot be moved to indignation"

"मैं ऐसा मनुष्यको नहीं मंगता हूं कि जो
असत्यकी तर्फ गुस्सा न करे."

लोकप्रियताका असाधारण प्रेम और लोक-
निंदाका डर के लिये मनुष्य सच्ची बात कहनेमें ड-
रता है. ऐसे आदमी जनसमाजका कुछ हित न-
हीं कर सकते हैं. सच्चा ज्ञानका फैलाव करनेके लि-
ये 'सोक्रेटिस' को मरना पडा था; 'ब्रनो' को जला दीया
था; 'रोजर बेकन' को कैद करके मार दीया था;'स्पी
नोझा' को खुद उसके याहुदी भाइओंने बहुतही सता-
या था; परन्तु वो सब तत्ववेत्ताओं सत्यका उपदेश
करनेमें चुस्त (दृढ) रहे थे.

तो भी हदमें रहना चाहिये. 'सत्य कथनकी
हिमत' (Moral Courage) और 'अप्रिय असत्य' उन
दोनुके बिचमें अंतर बहुत थोडा है. कभी जरा ज्यादे

खीसे तो 'अप्रिय असत्य' का गुन्हेगार हो जावे. ज्युं ज्युं मनुष्यको अनुभव और ज्ञान मीलता है त्युं त्युं वह प्रिय और सत्य कहनेकी खुबी समझता है.

अब झूठ बचनका भी थोडा स्वरुप दिखाउंगा. खुल्ला झूठको तो सब कोइ पीछानते हैं, परन्तु कीतनीक तराहके झूठको नहीं पीछाननेसे भूल हो जाती है.

(१) कीतनेक लेखकों, ग्रंथकारों, वक्ताओं, उपदेशकों छोटीको बडी और रजको गज करते हैं. यह बडा भारी झूठ है. ऐसे लोग कहते हैं कि हम शुभ आशयसे बोलते हैं इस लिये दोष नहीं होता है. परन्तु यह कहना भी झूठ है. क्या सक्कर नहीं होनेसे नीमक खायगा तो मुख मीठा होगा? कीतनेक पुराणों और ग्रंथके बनानेवाले लोगोंने जगतमें व्हेम और पाखंडको फेलाये हैं. एक कहता है कि, भगवानने जो स्त्रीयोंकी साथ जार कीया वो सब स्त्रीयोंको मोक्ष मीली. क्युं कि भगवानका प्रेम पाया वोही बडा भाग्यकी निसानी है! अब देखिये! क्या तो भगवानका प्रेम और क्या व्यभिचार! भगवा-

नका प्रेम प्राप्त करना यह अच्छी बात है परन्तु उस्को बढाके व्यभिचार करने तक उपदेश किया यह कैसी मूर्खता है?

भगवानकी पूजा करना अर्थात् मनसें उस्पे प्रेमभाव रखना, इस बातको बढा कर कीतनेक लोग अशरिरी भगवानकी मूर्त्ति बनाते हैं, उस्में कोमल पुष्प धरते हैं;उस्की पास तराह तराहके पकवान आदि धरते हैं, घंटा बजाते हैं. देखिये! सची पूजाका उपदेश तो दूर ही रहा परन्तु पाखंडको चलाया.

कोइ कहता है कि गौ का शरीरमें हजारो देव रहते हैं; इस लिये गौकी सदैव भक्ति करना. अब इस्में बात इतनी ही है कि गौ दूध देती है, उस्के संतान (बेल) खेती करते हैं, इत्यादि सेंकडो तराहके हित गौसे होते हैं इस लिये गौको अच्छी तराहसे पालना चाहिये. इस बातको बढा कर गौ के शरीरमें हजारों देवका वास ठरा दीया और उस्की पूजाका उपदेश कर दीया!

जलस्नानसे, देशाटनसे, इत्यादि का-

येसे शारीरिक लाभ होते हैं परन्तु इस बातको बढा कर कीतनेक ग्रंथकारोंने उपदेश किया की यात्रा और तीर्थस्नानसें स्वर्ग मीलता है और काशी (बनारस)में जाकर मरनेसे मोक्ष मीलती है !

यह सब अतिशयोक्ति (exaggeration) को बडा भारी झूठ कहा जाता है. कोइ चीजमें जीतना गुन होवे इतना ही कहना चाहिये, ज्यादे कहनेसे मनुष्य दोषीत होता है.

(२) तुच्छकार युक्त वचन भी असत्य वचन है.

(३) काल विरुद्ध भाषा भी असत्य गीनी जाती है. जैसे कि, लग्नके अवसरमें "राम बोलो!' ऐसा बोलनेसे लोक मूर्ख कहेंगे.

(४) जो वचन सूनकें कीसीको भारी संताप होवे ऐसा वचन भी असत्य है.

(५) जीस वचनसे कोइ व्रतधारीका व्रत शिथिल हो जावे ऐसा वचन भी असत्य है.

(६) दुर्ष्टोंका गुणकथन और निष्पप्रयोजन

बातों (गप्पोडें) भी असत्यमें गीने जाते हैं.

(७) कीसीकी निंदा और चाडीचुगली भी असत्य है; पराया छीद्र खूल्ला करना और आपकी वडाइ करनी वो भी असत्य है.

(८) हांसी—मश्करीमें असत्य बोलनेवाले मनुष्यकी सच्ची बात भी कोइ नहीं मानता है. और हांसीसे कभी कीस्का मृत्यु भी होता है.

(९) ज्यादे प्रलाप करना, बोल बोल करना वो भी एक प्रकारका असत्य है. जो शब्दसे कुछ प्रकारका कीसीका हीत नहीं होता है ऐसा शब्द बोलना नहीं चाहीये.

विचार.

सब तराहके दुष्ट विचारोंको मगजसे दूर रखना चाहिये. विचारमें असत्य दाखल होनेसे वर्तनभी ऐसा होता है. इस लिये अच्छे विचारों प्राप्त करनेकी कोशीश करना. सज्जनोंकी सोबत, उत्तम ग्रंथकारोंके पुस्तकों और शास्त्रोंका पठन—पाठन इत्यादिका परिचय रखना. स्वदेश प्रेम, स्वधर्म राग, प्राणी मात्रसें

मैत्रिभाव इत्यादि तराह के विचारोंको मगजमें इकठे करना. सत्य बिचारोंका प्रभावसे मनुष्य चाहे सो कर सक्ता है.

क्रिया.

सत्य क्रियाके लिये इतना कहना बस है कि:—

सब जीवोंको आपकी बरावर गीनके चलो; कीसीको दगा मत दो; कीसीको दुःख मत उपजाओ; झूठी गवाही [साक्षी] मत दो, झूठा खत मत करो; बन सके तो परमार्थ करो; भलाइ और नेकी की कीर्ति करो : बस! वोही कायिक सत्य है.

सत्यसे क्या लाभ होता है?

अब में बताउंगा कि सत्यसे क्या लाभ और असत्यसे क्या गेरलाभ होता है. असत्यसे कोइ विश्वास नहीं रखता है. असत्यसे लक्ष्मीका नाश होता है. कभी असत्यसे थोडा बहुत द्रव्य मील जाता है तो वो द्रव्य अपने खजानेमें जा कर अपना मीजका द्रव्यको भी साथमें ले कर भाग जाता है; अर्थात असत्यसे मीला हुआ धन पहीलेका धनका भी नास करता है. असत्यसे परभवमें भी दुःख होता है.

सत्यसे लोगमें कीर्ति, कभी कभी धनका लाभ, परलोकमें सुख आदि लाभ है. परन्तु सबसे बडा लाभ तो सत्यसे यह होता है कि सत्यवंत मनुष्यका. हृदय सदैव आनंदमें रहता है; वो कीसीसे डरता नहीं है. उपनिषद्का जो वाक्य आगे लीखा गया है वो कहता है कि ' सत्यसे मत चूको, धर्मसे मत चूको, कुशलसे मत चूको, भूति (आबादि) से मत चूको, स्वाध्याय और प्रवचनसे मत चूको. क्युं कि सत्य है सो ही धर्म है, सो ही कुशल है, सो ही भूति है, सो ही स्वाध्याय है, और सो ही प्रवच्चन है.

प्रकरण ७.

संजम—संयम.

विमुत्ता हु ते जणा, जे जणा परिगामिणो लोभं अलोभे-ण दुगंछमाणे लद्धे कामे णाभिगाहइ, विणावि लोभ निक्खम्म एस अकम्मे जाणंति पासति । पडिलेहाए णावकंखति

श्री आचारांग सूत्र.

अर्थ —खरेखर वोही पुरुषोंको विमुक्त समझना कि जो सयमको सदा पाले जो पुरुष लोभका तिरस्कार करके निर्लोभी हो कर कामभोगको वांच्छे नहीं अथवा अव्वलमें लोभको निर्मूल करके पीछे दीक्षीत होवे वो कर्म रहीत बन कर सर्वज्ञ सर्वदर्शी होवे

जैसे समुद्रमें चलनेवाला झाझमें छिद्र होनेसे पानी अंदर आता है और झाझ डुब जाता है, ऐसे ही संसार रुपी समुद्रमें शरीररुप झाझ है, जिस्में आश्रव (पाप आनेका रस्ता) रुप छिद्र पडनेसे पाप रुप पानी आके शरीरमें बेठी हुइ आत्मा-

को डूबाता है.

जब तक वह आश्रवद्वार अथवा आश्रव-छिद्र बंध नहीं किया जाता है तब तक पाप समय समय आता ही रहता है; क्षण मात्र भी बंध नहीं रहता है. वह आश्रव ५ प्रकारके होते हैः—

१. "मिथ्यात्व आश्रव" झूठाको सच्चा माने और सच्चाको झूठा माने इस्से मिथ्यात्व आश्रव दोष लगता है. इस्के २५ भेद हैं, जिस्में मुख्य पांच हैः—

(१) अभिग्रहिक मिथ्यात्व; (२) अनभिग्रहिक मिथ्यात्व; (३) अभिनिवेशिक मिथ्यात्व; (४) संशयिक मिथ्यात्व; (५) अनाभोग मिथ्यात्व.*

२. "अव्रत आश्रव":—पांच इन्द्रियों और मनसे पृथ्वी आदिक छकायका वध करनेसे अव्रत आश्रव लगता है.

३. "कषाय आश्रव":—इस्के चार प्रकार हैं: (१) क्रोध कषाय, (२) मान कषाय, (३) माया

---

* इस विषयका पुरा खुलासा के लिये "सम्यक्त्व" पुस्तक पढना. कि जिस्में सम्यक्त्व और मिथ्यात्वका अच्छा विवेचन किया गया है. २३२ पृष्ट हैं. किम्मत ०-६-० अहमदावाद—'जैन हितेच्छु" ऑफिसका मेनेजरको लिखनेसे पुस्तक मीलेगी.

कषाय और (४) लोभ कषाय.

४. "प्रमाद आश्रव":—इस्के ५ प्रकार हैं; (१) मद [अभिमान]; (२) विषय [पंच इन्द्रियके सुख] में लुब्ध होना; (३) निद्रा; (४) विकथा.

५. "अशुभ योगाश्रवः"—इस्के ३ प्रकार हैं. (१) मनसे कीसीका बूरा चिंतवे सो; (२) बचनसे कीसीको बूरा कहे सो (३) कायासे अयोग्य कृत्य करे.

ऐसे ५ आश्रव शरीर रुपी झाझको संसार-सागरमें डुबानेके लिये पापरुपी पानी आनेके द्वार हैं, कि जो हरघडी खुल्ले ही रहते हैं.

उन पांच आश्रवोंके प्रतापसें इस जीवने चार गति चोवीस दंडक और ८४ लाख जीवयोनिके विषे अनंत पूद्गल परावर्तन कीये हैं; और परतंत्रतासे अनेक दुःख सहन कीये हैं; जेसे किः—

नर्कवासके दुःखो.

अनंत क्षुधा, अनंत तृषा, अनंत ठंड (शीत), अनंत ताप, अनंत रोग, अनंत सोग, अनंत भय, अनंत परतंत्रता, अनंत भार सहन करना होताहै.

और १५ जातके परमाधामि अहोनिश मारताड कर रहे हैं. कोइ मार मारके हड्डी ढीली कर देते हैं, कोइ अग्निमें चलाते हैं, कोइ शस्त्रसे छेदन भेदन करते हैं, कोइ करोडो मणका बोजा गरदनपर रख देते हैं, कोइ चीमटेसे मांस चुंटते हैं, कोइ तेलकी कडाइमें डाल कर सेकते हैं, इत्यादि प्रकारके असह्य दुःख परमाधामीओं दे रहे हैं. इस जीवने उन सब प्रकारकी वेदना अनेक वख्त सहन की है.

तिर्यंच योनीके दुःखो.

पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वनस्पति आदि एकेन्द्रिय जीवोंको पल पलमें कीतनी छेदन-भेदन-ताडन-तापन-खांडन-पीसण-इत्यादिक वेदना सहन करनी होती है, वो सब कोइ जानता ही होगा. उन बेचारेंको क्षण मात्र भी आराम नहीं है. बेइन्द्रिय, तेंद्रिय, चौरेन्द्रिय जीव [जळो,जूं, खटमल, वींछु इत्यादि) को भी कीतने लोक सताते हैं, मारते हैं. पंचेन्द्रिय जलचर जीवों जैसे कि मच्छी, पचेन्द्रिय स्थलचर जैसे की गौ, गद्धा, बेल इत्यादिक, पचेंन्द्रिय खेचर जैसे कि सूडा-पोपट इत्यादि, पंचेन्द्रिय उरपर जैसेकि सर्प, भुजपर जैसे कि उंदर, इ-

त्यादिक योनीमें अनेक अनेक वख्त जन्म लीया है. और परतंत्रतासे,शीत-ताप, मारन-ताडन इत्यादि सहन कीये हैं.

मनुष्यके दुःखो.

मनुष्य योनिमें भी दुःखो बहुत हैं. अव्वल तो गर्भावासमें अनेक प्रकारकी पीडा होती है. जन्म और मृत्युकी वख्त भी उज्वल वेदना होती है. उनके सिवाय भी, आधि, व्याधि, उपाधि, वृद्धावस्था आदिका दुःख अकथनीय है.

देवलोकके दुःखो.

देवतामें अभोगीचारक देव होके दुसरेका सदा हुकम उठाना पडता है. गलेमें ढोलक रखके इंद्रादिकके सामने नाचना पडता है. अन्य देवोंकी रिद्धि देखकर झुरना पडता है. चोरी-जारी करके ६ मास तक असह्य वेदना सहन करनी पडती है.

इसी तराह चौगतिमें इस जीवने अनेक वख्त दुःखों सहन कीये हैं. तो भी उस्को विचार नहीं आता कि अब मनुष्यावतारका अवसर मीला है

और अन्य जोगवाइ* भी मीली है तो फीर फीर चौ-
गितका भ्रमण करना न पडे ऐसा कुच्छ कार्य कर लूं.

आश्रव द्वारको बंध करनेके लिये 'संयम' ही उत्तम साधन है. हिंसासे आश्रव है और अहिंसासे संयम है. जब नियम कर लिया कि विश्वके सब जीवोंको में अभयदान देता हूं, मेरी आत्मा सरीखी सबकी आत्मा है ऐसा जानकर में कोइ भी छोटा मोटा जीवको लेश भी मन-वचन और कायासे दुःख नहीं करुं ऐसा नियम कर लिया अर्थात् अपनी आत्माको अपनी काबुमें ले ली, उस्को ही संयम कहता है.×

---

*दश प्रकारकी जोगवाइका वर्णन एक कवितमें किया है -

मनहर.

रूडो 'मनु-भव'[१] 'आर्य क्षेत्र'[२] ने 'उत्तम कुळ'[३]
'लक्ष्मी तणी लहेर'[४] 'लांबु आवखुं'[५] प्रमाणिए.
'पांचे इन्द्रि पुरी'[६] मळी 'शरीर निरोगी'[७] वळी,
'समागम साधु तणो'[८] जेथी शास्त्र सूणीए. १
'प्रतीति धरम केरी'[९] 'इच्छा तप संयमनी'[१०]
एवी 'दश जोगवाइ' दुरलभ जाणीए;
मळयां जे साहित्य सारां, करीए न ते अकारां,
रूडा उपयोग वडे, आतमने तारीए. २

× यम = to restrain काबुमें रखना, अपने मन-वचन और कायाको स्वतत्र गति करनेसे रोकना और अपनी काबुमें रखना उस्को ही 'संयम' कहता है.

संपूर्ण संयम तो त्यागी (साधु) का ही होता है. संसारी सज्जन भी संयम पूर्णपणे पाल सकता नहीं है; क्युं कि उस्कोतो स्त्री–पूत्र आदि लगे हैं. उन्का निभावके लिये हिंसाके छोटे छोटे कार्य करने ही पडते हैं. तो भी संसारी मनुष्य बहुत तराहकी हिंसासे दुर रही सकता है और उतने दरज्जे संयम पाल शकता है. संसारीके लिये १२ व्रत मुकरर किये गये हैं. इस्से उस्का संसारव्यवहारमें कुछ हरकत नहीं होती है और यथाशक्ति आश्रवको भी रोका जाता है. [१] स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत, [२] स्थूल मृषावाद विरमण व्रत [३] स्थूल अदत्तदान विरमण व्रत, [४] स्थूल मैथुन विरमण व्रत, [५] स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत, [६] दिशा परिमाण व्रत, [७] भोगोपभोग परिमाण व्रत, [८] अनर्थदंड विरमण व्रत [९] सामायिक व्रत, [१०] दिशावगासिक व्रत, [११] पोषध व्रत, (१२) अतिथि संविभाग व्रत.+

साधुका मार्ग बडा मुश्कील है. धीरवीर पुरुषों ही वह मार्ग अंगिकार कर सकते हैं. कायरका

+ इस विषयका विस्तारपूर्वक ज्ञानके लिये, वांचो "बारव्रत"-नामकी पुस्तक किम्मत ०–२–० अहमदाबादकी "जैन हितेच्छु" ऑफिसमें मीलती है.

कुछ काम नहीं है. कीतनेक लोग साधु नाम कहलाते हैं परन्तु साधुपनासे अज्ञ हैं और हिंसा और मायामें अहोरात्रि रमते हैं. ऐसे वाल जीवों इस जगतमें वहुत ही हैं. सच्चे साधु तो १७ प्रकारके संयमको वरावर जानते हैं और तदनुसार चलते हैं.

(१) पृथ्वी काय संयमः—पृथ्वीकाय अर्थात् मट्टी (हींगळ, हडताल, खडी, गेरु, क्षार, लूण, पथ्थर इत्यादि) का एक जुवारका दाणा जीतना भागमें असंख्यात जीव हैं. उस्मेंसे एक २ जीव नीकलके कबूतर जीतनी काया (शरीर) करे तो इस लक्ष योजनके जंवुद्धीपमें भी उस्का समावेश नहीं हो सके.

कोइ प्रश्न करे कि पृथ्वीकायके जीवों देख सकते नहीं, वोल सकते नहीं, चल सकते नहीं; तो उन्को मारनेसे कीस तरह पीडा हो सकती? उस्का जवाव आचारांग सूत्रमें अच्छी तरहसे दिया है कि:—जैसे कोइ जन्मसे अंध और वधीर पुरुषको कोइ मनुष्यों हाथ, पांव, पेट, छाती, कान, मस्तक इत्यादि जगामें भालेकी अणी मारे तो उस्को वेदना

होती है परन्तु वह बोल शकता नहीं है, ऐसे ही पृ-
थ्वीकायके जीवोंके लिये भी समझना. इस लिये—

"तं परिण्णाय मेहावी नेव सयं पुढविसत्थं समारंभेज्जा, नेवण्णेहि पुढविसत्थं समारंभते समणुजाणेज्जा जस्से ते पुढविकम्म समारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे त्तिबेमि"।

अर्थात्—"ऐसा जानकर बुद्धिमान पुरुषको पृ-
थ्वीकायकी हिंसा नहीं करनी चाहिये, अन्य कीसी-
की पास नहीं करानी चाहिये, और अनुमोदना भी
नहीं चाहिये. जो प्रानी इसी तराह पृथ्वीकायकी हिं-
साको अहितकारक समझ कर उस्का त्याग करे उ-
स्को ही 'मुनी' कहना"

(२) अपकाय संयमः—अपकाय अथवा पानीके
जीवोंका संयम. नदी, समुद्र, सरोवर, वर्षाद (पाउस),
ठार, बरफ (हेम), कूवा इत्यादि जलके बहुत प्रका-
र हैं. जलका एक बुंदमें असंख्यात जीव हैं; उस्में-
से एक एक जीव नीकलके भ्रमर जीतनी काया
करे तो सारा जंबुद्वीपमें उन्का समावेस नहीं हो सके.
पृथ्वीकायसे भी अपकायके जीव बहुत सुक्ष्म हैं.

श्री आचारांगजीमें कहा है किः—

"अपकायका आरंभ अवश्यमेव कर्मबंधका हेतु

है, मृत्युका हेतु है, नर्कका हेतु है. तथापि मनुष्यों कीर्त्ति आदिकके लिये अपकायके जीवोंको शस्त्रादिसे मारते हैं और उन्की साथ अन्य जीवोंको भी मारते हैं. पानीकी साथ अन्य भी अनेक जीवों रहते हैं और पानी भी सजीव है.

(३) अग्निकाय संयमः—चकमककी, चुलेकी, बिजलीकी, भट्ठीकी इत्यादि अनेक प्रकारकी अग्निकी एक एक चीणगारीमें असंख्यात जीव हैं; उस्मेसें एक २ जीव नीकलके राइ जीतना शरीर करेतो सारा जंबुद्वीपमें समावेश भी नहीं हो सके. अपकायसे भी अग्निकायके जीव बहुत सूक्ष्म हैं.

श्री आचारांग सूत्रमें कहा है किः—

"कीतनेक लोग कहते हैं कि हम 'अनगार हैं'* परन्तु यह मिथ्यावाद है. क्युं कि अग्निकाय और उस्की साथ अन्य अनेक जीवोंकी हिंसा वो लोग

---

* यह सब वातों साधु मार्गके लिये हैं. तो भी संसारी जनों भी १७ प्रकारके संयम थोडा बहुत पाल सकते हैं इस बातका उपदेश "हित शिक्षा" और "बार व्रत" नामके पुस्तकोमें अच्छी तराहसे लीखा है दोनु पुस्तक "जैन हितेच्छु" ऑफासमें मीलती हैं बार व्रत ०-२-०, हित शिक्षा ०-४-०

कर रहे हैं."

(४) वायुकाय संयमः—तेउकाय अर्थात् अग्नि-कायके जीवोंसे भी वायुकायके जीवों अति सूक्ष्म हैं. भगवानने अच्छी तराहसे समजुती दी है किः—

इमस्सचेव जीवियस्स परिवंदण माणण पूयणाए, जाइ-मरणमो यणाए, दुक्ख पडिघायहेठे, से सयमेव वाकसत्थ समा रंभति, अन्नेहि वाउसत्थं समारंभावेलि, अन्ने वा वाकसत्थं स-मारंभते समणु जाणति, ते सं अहियाए, ते सं अबोहिए ॥

अर्थात्—"जो लोग इस क्षणिक ज़िंदगीके मान कीर्त्ति अर्थे, उदर निर्वाह अर्थे, जन्म मर-णसे मुक्त होनेके लिये, और दुःखोंको दुर करनेके लिये वायुकायकी हिंसा करते हैं, कराते हैं और अ-नुमोदते हैं, उन लोगोंकि इस प्रकारकी प्रवृत्ति उ-न्को आखीरमें अहितकर्त्ता और अज्ञानको बढाने-वाली होती है.

सब प्रकारके जीवोंकी हिंसाके बारेमें भगवा-नने इसी तराह कहा है. तो भी कीतनेक साधूओं धर्मका नामसे मंदीर बनानेका, पुष्पादिसे पूजा क-रनेका और हझारो तराहकी हिंसाका उपदेश करते हैं यह बडी भारी मोहदशा है.

(५) वनस्पतिकाय संयमः—वृक्ष, पत्र, पुष्प, वेल, फल, बीज, कंदमूल इत्यादिकको वनस्पति कहते हैं. उस्में जो अनाज (धान्य) है उस्के एक एक दानेमें एक एक जीव है; भाजी लीले फल—फूल इत्यादिकमें असंख्यात जीव हैं, और जमीनकी भीतरमें उत्पन्न होनेवाले कंदमूल [कांदे, गाजर, सकरकंद इत्यादि] हैं उस्के एक सुइकी अग्रपे आवे इतने भागमें अनंत जीव रहे हैं. श्री आचारांगजीमें कहा है किः—मनुष्यकी माफीक वनस्पति भी सजीव है; क्युं कि मनुष्य शरीरकी माफीक वनस्पति भी पेदा होनेवाली चीज है, उस्की माफीक ही बढती है, उस्की माफीक उस्में भी चित्त है, उस्की माफीक वो भी आहार करती है, उस्की माफीक प्रतिक्षण उस्का रुपान्तर होता है, वगेरा, वगेरा. इस लिये साधु वनस्पतिकायकी हिंसा कभी नहीं करता है, नहीं कराता है और नहीं अनुमोदता है."

(६) बेइन्द्रिय संयमः—काया और मुख वाले जीवों जैसे कि संख,छीप,कौडी इत्यादिकको पीडा नहीं करना.

(७) तेंद्रिय संयमः—काया, मुख और ना-कवाले जीवों जैसे कि जूं, कीडी, खटमल (मांक-ड) इत्यादिकको पीडा नहीं करना.

(८) चौरेन्द्रिय संयमः—काया, मुख नाक और आंखवाले जीवों जैसे कि मक्षीका, मच्छर, भ्रमर, विंछू, तीड इत्यादिककी दया पालना.

(९) पंचेन्द्रिय संयमः—काया, मुख, नाक, आं-ख, कानवाले जीवों जैसेकी नारकी, मनुष्य और तिर्यंच पशु-पक्षि आदिकको कोइ तराहसे दुःख नहीं देना, उन्से द्वेषभाव नहीं रखना, कटू वचन नहीं कहना, इत्यादिक प्रकारसे संयम पालना.

(१०) अजीव काया संयमः—जिस वस्तुमें जीव नहीं है ऐसी निर्जीव वस्तुको भी अयत्नासे नहीं वापरना चाहिये; क्युं कि कोइ चीजकी मुदत खलास होनेके सिवाय उस्का विनाश करना वह भी दोष है. साधुकी पास वस्त्र—पात्रादि होवे और को-इ गृहस्थ उस्को दुसरा वस्त्र—पात्र देवे तो जूना वस्त्र पात्रादिको तोड—फोड नया वस्त्रादि लेना असं-यमका काम है, क्युं कि कोइ भी वस्तु संसारमें

बिना आरंभ और बिना परिश्रम नहीं नीपजती है और गृहस्थको मुफतमें नहीं मीलती है. गृहस्थ एक चीजको बहुत उद्यमसे पैदा करे और उस्को प्राणसे प्यारी करके रखे और साधुजीको देखकर महा लाभका कारन जानकर उस्को दे देवे फिर वह साधु नयी चीजका लोभसे जूनी चीजका नाश करे तो संयमकी रक्षा नहीं होती है.

(११) पेहा संयमः—कोइ भी चीज बीना देखे किंवा बीना तपास करे वापरनी नहीं चाहीये और रात्रीभोजन नहीं करना चाहिये.

(१२) उपहा संयमः—मिथ्यात्वीको उपदेश करके समकिती बनावे और मार्गानुसारीको साधू बननेका उपदेश करे और जो कोइ मार्गानुसारीपणासे किंवा साधुपणासे ढीला पड जावे उस्को भली भान्ती समजुती दे कर दृढ बनावे.

(१३) पूजणा संयमः—रजोहरण आदिकसे जमीन पुंज [झाड] कर चले; इससे जीवोंकी रक्षा होती है और चलनेवालेकी भी पथ्थर, काच, बींछू आदिसे रक्षा होती है.

(१४) परीठावणीया संयमः-पीशाब, थूंक आ-

दि को फटी हुइ जमीनपे, लीलोत्री और कीडीया-
दिकके नगरेपे, भींजी हुइ जगामें नहीं फेंकना औ-
र खुल्ला नहीं रखना.

(१५) मनः संयमः—मनके अपनी काबुमें
रखे; कीसीका भी बूरा न इच्छे, सर्व जीवसे मैत्री-
भाव रखे, इच्छीत वस्तु मीलनेसे हर्ष और दुःखसे
दीलगीरि न करे; क्योंकि सब परमाणुके खेल हैं.

(१६) वचन संयमः—वचनको अपनी काबु-
में रखे; कठोर, छेदन भेदनकारी, अन्य जीवोंको पी-
डाकारी, हिंसाकारी, मिश्र, क्रोध उपजे ऐसी, मा-
न उपजे ऐसी, लोभ उपजे ऐसी, राग [प्रेम] का
बंधन होवे ऐसी, द्वेष उपजे ऐसी;अप्रतीतकारी, सु-
नी सुनाइ, निरर्थक, ऐसी बात कभी न करे और
तथ्य, पथ्य और प्रिय वचन ही बोले.

(१७) काया संयमः—शरीरको अपनी का-
बुमें रखे; आहार-विहारादिमें अयत्नासे नहीं वर्त्तें;
जो जो संयमकी क्रीया है उन सबको यत्नापूर्वक
आचरे; प्रमादी न बने.

इसी तराह १७ प्रकारका संयम धारण करके
बराबर पालनेसे आश्रवद्वार बंध होता है, और तप

आदिसे पहीले के किये हुए कर्मोंका नास होता है. ऐसा करनेसे मनुष्य मोक्षमें जाता है. परन्तु यह मार्ग दुक्कर है. श्री उत्तराध्यन सूत्रमें कहा है कि:—

चीराजीणं निगीणं, जडी संघाडी मुडीणं ।
एयाणी विन तायंती, दुसीलं परियागयं ॥

भगवां वस्त्र धारण करनेवाले, नग्न रहनेवाले, जटा रखनेवाले, मस्तक मुंडानेवाले इत्यादि अनेक रुप धारण किये; परन्तु जहां तक अनाचार का त्याग न किया जावे तहां तक उन्को मोक्ष देनेके लिये कोइ समर्थ नहीं है.

इस लिये आत्मार्थी जीवोंको संयम ही बडा भारी उपकारी है. वो तो सब ढोंग छोड देते हैं और सब आशाओं और निराशाको भी छोड देते है.

जीस साधूपनके लिये देवों भी झूरते है, जीस साधूपनकी पास मोक्ष नगरीका इजारा हैं, जीस साधूपन भिक्षुकोंको महाराजाके भी राजा बनाता है, जीस साधूपन इस जन्ममें आधि-व्याधि-उपाधिका टालनहार और अन्य जन्ममें देवलोक और मोक्ष तक भी देनेवाला है, उस साधूपनको कोटी नमस्कार हो!

प्रकरण ८.

तव—तप.

तवेणं भंते जीव किं जणयइ ।
तवेणं वोदाणं जणयइ ॥

श्री उत्तराध्ययन सूत्र

(शिष्य पूछता है) तप करनेसे क्या फल होता है ? (गुरुजीने जवाब दिया कि) तपका प्रभावसे मनुष्य बांधे हुए कर्मोको खपाता है

सुवर्ण प्रकाशीत पीली धातु है परन्तु अनादि कालसें मीट्टीकी साथ मीला हुआ ही जमीनमें से मीलता है. सुवर्णमिश्रित मीट्टीको अग्निके प्रयोगसे निर्मल बनाते हैं. ऐसे ही अपनी आत्मा भी प्रकाशीत और शुद्ध है परन्तु अनादि कर्मोंसे संयुक्त होनेके लिये उस्का प्रकाश छूपा रहा है. जब उस्पें तप रुपी अग्निका प्रयोग किया जायगा तब कर्म रुपी मीट्टीका क्षय होगा और आत्मा रुपी शु-

द्ध सुवर्ण प्रकाशमान होगा.

कोइ कहते हैं कि तप करनेवाले लोग मूर्ख हैं, क्युं कि वो लोग इस शरीरको दगा देते हैं. शरीरको भुख प्याससे दुःख देनेसे आत्माको क्या फायदा होता है? ऐसा कहनेवाले लोगोंकु पूछना चाहिये कि आप कभी घृत खरीदते हो? घृतमें छाछ होनेसे आप क्या करते हो? पीतलके बरतनमें घृतको डाल कर अग्निपे रखते हो इस्से घृत शुद्ध हो जाता है; परन्तु घृतको शुद्ध करनेके लिये बरतनको क्यों तपाते हों? बस! जैसे घृतको शुद्ध करनेके लिये घृतको धारण करनेवाला बरतनको अग्निपे रखना होता है ऐसे ही आत्माको शुद्ध करनेके लिये आत्मा जीस देहमें स्थित हुइ है वह देहको तपस्याकी अग्नि देनी पडती है.

तप कुछ शारीरिक ही होता है ऐसा नहीं है. तपके दो प्रकार है. (१) बाह्य तप और (२) अभ्यंतर तप.

बाह्य तप.

बाह्य तपके ६ भेद है. (१) अणसण, (२) उणोदरी. (३) भिक्षाचारी, (४) रस परित्याग, (५)

कायक्लेष, (६) प्रतिसंलीनता.

(१) अणसण तपः—अन्न–जल–मुखवास–मुखडी यह चारों आहारका त्याग करना उस्को अणसण तप कहता है.

उस्में भी २ प्रकार हैं. [१] मर्यादा युक्त तपको 'इतरिया' कहते हैं और [२] जावजीव चारों आहारका त्याग करना उस्को 'अवकाहीया' कहते हैं.

'इतरिया' तपके भी ६ भेद है. [१] श्रेणी तप, [२] परतर तप, [३] घन तप, [४] वर्ग तप, [५] वर्गावर्ग तप, [६] प्रकीर्ण तप.

श्रेणी तपके फीर अनेक भेद हैं, जैसेकि चोथ [उपवास], छठ [बेला] अठम [तेला], द्वादशम् [पांच] इत्यादि ६ मास तककी तपस्या. 'परतर तप' इस कोठक मुजब उपवास करे उस्को कहते हैं. इसी मुजब आठ आंकका कोठक उस्का नाम 'घन तप'; और ६४×६४=

१	२	३	४
२	३	४	१
३	४	१	२
४	१	२	३

४०९६ आंकका 'वर्ग तप'; और ४०९६×४०९६=

१६७७७२१६ आंकका कोंष्टकको 'वर्गावर्ग' तप कहते हैं. 'प्रकीर्ण' तपके अनेक भेद हैं जैसे कि, एकावली, मुक्तावली, रत्नावली, लघूसिंहक्रिडा, वृद्धसिंहक्रिडा,इत्यादि, इत्यादि.

अवकाही (जाव जीवके) तपके २ भेद हैं:— (१) भत्त पच्चखाण; (२) पादोपगमन. भत्त पच्चखाणमें आहारका त्याग किया जाता है और पादोपगमनमें आहार और शरीर दोनुका त्याग किया जाता है अर्थात् हीलने चलनेका भी त्याग कीया जाता है.

(२) उणोदरी तपः—उपगरण और आहार कमती करना उस्को उणोदरी तप कहते हैं.

(३) भिक्षाचारी तपः—बहुत घरकी भिक्षा से अपना निर्वाह करे उस्को भिक्षाचारी तप अथवा गौचरी भी कहते हैं; क्युं कि गाय भी इसी तराह बहुत जगाहसे थोडा२ घास खाके पेट भरती है. भिक्षाचारी तपके ४ भेद हैं. (१) द्रव्यसे (२) क्षेत्रसे (३) कालसे (४) भावसे. अमुक जगासे, अमुक मनुष्यका हाथसे, अमुक चीजका आहार अमुक वख्तपर मीलेगा तब मैं पारणा करुंगा ऐसा अभिग्र-

हको भिक्षाचारी तप कहते हैं.

(४) रस परित्याग तपः—रसका त्याग क-रना उस्को रसपरित्याग तप कहते हैं. ऐसा तप क-रनेवाला महात्मा बेस्वाद, लुखा आदि सब प्रकार-का अन्न खा लेता है, उस्से उस्को सहनशीलता और समानभावकी प्राप्ति होती है और इन्द्रियनि-ग्रहकी शक्ति भी मीलती है.

(५) कायक्लेश तपः—कायाको तकलीफ दे कर इंद्रियोंको अपनी तावेदार बनावे उस्को का-यक्लेष तप कहते हैं. विना तकलीफ कोइ काम नहीं होता है. एशआरामके शोखीन लोग और शरीर की रक्षा करनेमें ही धर्म माननेवाले लोग धर्म-अ-र्थ—काम किंवा मोक्ष कुछ नहीं साध सकते हैं.

काय क्लेष तपकेभी अनेक भेद हैं. 'ठाण-ठितीय' तपमें काउसग्ग करके खडा रहे; 'ठा-णाइ तप' में विना काउसग्ग ही खडा रहे. 'उकुडासणीय' तपमें दोनु गोडेके विचमें मस्त-क रखकर काउस्सग्ग करे. 'पडीमाठाइ' तपमें १२ प्र-कारकी पडिमा धारण करे. पहीली पडीमा एक मा-

स तक एक दात आहार और एक दात पानीकी. दुसरी पडीमा २ मास तक २ दात आहार और दो दात पानीकी. तीसरी पडीमा तीन दात आहार और तीन दात पानीकी. चौथी पडीमा चार दात आहार और चार दात पानीकी. पांचवीं पडीमा पांच दात आहार और पांच दात पानीकी. छट्ठी पडिमा छ दात आहार और छ दात पानीकी. सातमी पडिमा सात मास तक सात दात आहार और सात दात पानीकी. ८ मी पडिमा सात दीन तक चौविहार एकांतर उपवास करे, दीनको गांवकी बाहार सूर्यकी आतापना लेवे, रातको वस्त्र रखे नहीं तीन प्रकारके आसन करे, और देव—दानव मानवका परिसह सहन करे. ९ मी पडिमा सात दीन चौविहारं एकांतर करे दीनको सूर्यकी आतापना लेवे, रातको वस्त्र रहित ३ प्रकारके आसन करे १०मी पडीमा सात दीन चौविहार एकांतर करे, दीनको सूर्यकी आतापना लेवे, रातको तीन प्रकारके आसन* करे.

११ मी पडीमा बेला करे, दुसरे उपवासके रोज गांवकी बाहार जा के ८ प्रहरका कार्योत्सर्ग करे, ती-

---

*गोदू आसन, वीरासन, आदि आसनोंका अनुभव गुरूगमसे प्राप्त करना चाहिये

न प्रकारके उत्सर्ग सहे. १२ मी पडीमा तेला (अठम) करे, तीसरे दीन स्मशान भूमिमें कायोंत्सर्ग करे, एक पुद्गलपे दृष्टि रखे—आंख मीटावे नहीं. उस वख्त देव, मनुष्य और तिर्यंच तीनमेंसे एकका उपसर्ग अवश्य होवे. यदि तपस्वी चलायमान होवे तो उन्माद, धर्मभ्रष्टता और चीरकाल रहे ऐसी बीमारी होती है परन्तु दृढ रहनेसे अवधि—मनःपर्यव—केवल इन तीन ज्ञानमेंसे एक ज्ञान अवश्य ही प्राप्त होता है.

(६) प्रतिसंलीनता तपः—उस्के ४ भेद हैः— (१) इन्द्रिय प्रतिसंलीनता; (२) कषाय प्रतिसंलीनता; (३) योग प्रतिसंलीनता; (४) विचित सयणासण सेवयमाणे.

इन्द्रिय प्रतिसंलीनताः—श्रोत [कान]; चक्षु [आंख], घ्राणेन्द्रि [नासिका], रसेन्द्रि [जीह्वा], स्पर्शेन्द्रि [काया]ः इन पांच इन्द्रियोंको* जीतना, उस्को "इन्द्रिय प्रतिसंलीनता" तप कहते है.

---

* आंख, कान, नाक, आदि बाह्य शरीरको इन्द्रियों नहीं समझना, इन्को तो अवयवों कहते है परन्तु इन अवयवोंका जो धर्म (देखनेका-सुननेका इत्यादि) उस्को 'इन्द्रि' समझना भगवानको स्पर्शका काम करनेवाली काया थी परंतु स्पर्शेन्द्रि नहीं थी

श्रोतेन्द्रिका धर्म शब्द सूननेका है. उस्के फंदेमें मृग-फसाके आप ही मारा जाता है. चक्षु इन्द्रिका धर्म काला, नीला [हरा], लाल, पीला, स्वेत और मिश्र रंगोंके पदार्थोंको देखनेका है. उस्के फंदेमें फसा कर पतंग दीपकमें पडकर शरीरको जलाते है. घ्राणेन्द्रि (नासिका) का धर्म अच्छी और बुरी गंध जाननेका है. इस इन्द्रिके मोहसे भमरा कमलमें मर जाता है. रसेन्द्रि [जीह्वा] का धर्म खारा, मीठा, तीखा, कडूवा और खाटा रसको जाननेका है. इस इन्द्रिके बसमें मच्छी प्राण त्याग करता है. (जीह्वा वश रखनेसे और इन्द्रियों भी वशमें रहती हैं) स्पर्शेन्द्रिका धर्म हलका, भारी, ठंडा, गरम, लूखा, चोपडा, सुंवाला और खरखरा जाननेका है. स्पर्शेन्द्रिके वश होकर हाथी खाडमें पड कर मर जाता है.

ऐसा बिचार करके अपनी इन्द्रियोंको अपने काबुमें रखनी चाहिये. एक एक इन्द्रि बडे भारी दुःख देती है तो सब इन्द्रियों स्वतंत्र हो जानेसे भवभ्रमण करावें इस्में क्या आश्चर्य है?

(२) कषाय प्रतिसंलीनताः— क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारोंको कषाय कहते हैं, क्युं

कि उनसे संसारका कस आके कर्मोंका रस जमता है. क्रोध छोडके क्षमा, मान छोडके नम्रता, माया छोडके सरळता और लोभ छोडके संतोष स्विकारना, उस्को "कषाय प्रतिसंलीनता" तप कहते हैं.

(३) योग प्रतिसंलीनता—मन, वचन और काया का योग को शुद्ध मार्गमें प्रवर्त्ताना उस्को "योग प्रतिसंलीनता" कहते हैं.

(४) विचित सयणासण सेवणया—'विचित' अर्थात् मनुष्य–तिर्यंच–देवताकी स्त्री रहीत तथा पंडग (नपुंसक) रहीत + 'सयण' अर्थात् सय्या (सेजा) (१ वेलादिककी वाडीमें, २ कोटयुक्त बगीचेमें, ३ उद्यानमें; ४ यक्षादिकके देवस्थानमें, ५ पाणीकी पोहोकी जगाह, ६ सराय (धर्मशाला) में ७ लोहार प्रमुखकी शालामें, ८ बनीयेकी दुकानमें ९ साहुकारोंकी हवेलीमें १० उपाश्रय (धर्मस्थानक) में, ११ श्रावककी पोषधशालामें १२ धानादिकके कोठारमें १३ मनुष्योंकी सभामें, १४ पर्वतादिककी गुफामें; १५ राजसभामें १६ स्मशानादिककी छत्रीमें १७ स्मशानमें; १८ वृक्षादिक की नीचे.+ 'आसण' अर्थात् पाट—बाजोठ इत्यादि भोगवे सो 'विचित सयणासण सेवणया'

अभ्यंतर तप.

"अभ्यंतर तप" अथवा गुप्त तपके ६ भेद हैं. १ प्रायश्चित; २ विनय; ३ वयावच्च; ४ सज्झाय; ५ ध्यान; ६ विउसग.

(१)प्रायश्चित तपः—१० प्रकारके दोषोंका क्षय करनेके लिये "प्रायश्चित तप" किया जाता है. [१] कंदर्प=काम देवके वसमें होके दोष लगावे.[२]प्रमादके वसमें दोष लगावे.[३]अजाणपणेमें दोष लगावे. [४]क्षुधाके वसमें दोष लगावे.[५]आपदा(विपत्ति) के सबबसे दोष लगावे. [६] किसी तराहकी संका के सबबसे दोष लगावे. [७] उन्मत्तपनसे दोष लगावे. [८] किसी तराहके डरके लिये दोष लगावे. [९] किसीकी परीक्षा करनेके लिये दोष लगावे. [१०] किसीपे द्वेषभाव करके दोष लगावे.

जो शुद्धात्मा है, जातवंत है, कुलवंत है, विनयवंत है, ज्ञानवंत है, दर्शनवंत है, चारित्रवंत है, क्षमा-वैराग्यवंत है, जितेन्द्रिय है और जो पापका पश्चात्ताप करता है ऐसा प्राणी तो १० प्रकारमेंसे कोइ प्रकारका दोष लग जानेसे प्रायश्चित अवश्य

लेता है. अब जानना चाहिये कि प्रायश्चित देने-का अधिकारी कोन है? जिस्का आचार शुद्ध होवे, व्यवहार शुद्ध होवे, जो प्रायश्चितका विधिका जाण-कार होवे, शुद्ध श्रद्धावंत होवे, लज्जा दूर करके प्रा-यश्चित देनेवाला होवे, शुद्ध करनेको समर्थ होवे, गंभीर दीलका होवे, दोषीत प्राणीके मुखसे उस्का दोष कबुल कराके पीछे प्रायश्चित देवे ऐसा होवे, वीचक्षण होवे, और प्रायश्चित लेनेवालाकी शक्ति-का जाणकार होवे, ऐसा ही पुरुषकी पास प्राय-श्चित* लेना चाहिये.

(२) विनय तपः—अपनेसे बडा और ज्ञा-नादि गुणमें अधिक होवे उनका विनय करना चा-हिये. विनयका ७ प्रकार हैंः—१ ज्ञानविनय; २ दर्शनविनय; ३ चारित्रविनय; ४ मनविनय; ५ का-याविनय; ६ वचनविनय; ७ लोकव्यवहार विनय.

---

* कितनेक दोषकी शुद्धि आलोयणासे होती है कितने-ककी प्रतिक्रमणसे, कितनेककी कार्योत्सर्ग (काउसग्ग) से, कि-तनेककी छोटे तपसे, कितनेककी बडे तपसे शुद्धि होती है औ-र कितनेक दोषोंवालेको तो फीर दीक्षा देनी पडती है आकुटी हिंसा करनेवाले, झूठ बोलनेवाले, मैथुन सेवनेवाले, प्रवचनको उत्थापनेवाले मुनीओंको सखत तपस्याका दंड दिया जाता है और फीर दीक्षा दी जाती है

ज्ञानविनयके ५ भेदः—१ मति (बुद्धिवंत) ज्ञानीका विनय करे; २ श्रुति (शास्त्रके जाण) ज्ञानीका विनय करे; ३ अवधि (मर्यादा प्रमाणे क्षेत्रादिकके जाण) ज्ञानीका विनय करे; ४ मनःपर्यव (मनकी बात जाणे ऐसे) ज्ञानीका विनय करे; ५ केवल (संपूर्ण—लोकालोकके जाण) ज्ञानीका विनय करे.

दर्शन विनय के २ भेदः—१ सुश्रुखा करे;और २ आसातना टाले(१)कोइ समकिती स्वधर्मी आवे तो खडा हो कर सन्मान देवे, आसन देवे, वस्त्रादिक आमंत्रे, कीर्त्ति करे, वंदना करे, हाथ जोड खडा रहे, इत्यादिकको सुश्रुषा कहते हैं. और (२) देव, गुरु, धर्म, और चतुर्विध संघका अविनय नहीं करना अर्थात् आसातना नहीं करना.

चारित्र विनयके ५ भेदः—१ सामायिक चारित्र; २ छेदोस्थापनी चारित्र; ३ पडिहार विशुद्ध चारित्र; ४ सूक्ष्म संपराय चारित्र; ५ यथाख्यात चारित्र. इन पांच ही चारित्रके धरणहारोंका विनय करे.

मनविनय के २ भेदः—अप्रशस्त और प्रशस्त. हिंसाकारक, परितापकारक खोटे विचारोमें मन प्र-

वर्त्तें उस्को अप्रस्त कहते हैं. उस्को रोकना. और प्रशस्त अर्थात् जिन विचारोसें कीसीको भी हित पहुंचे ऐसे बिचार करना.

वचन विनयके उपर मुजब २ भेद हैं.

काया विनयके भी उपर मुजब २ भेद हैं.

लोकव्यवहार विनयके ७ भेदः—१ गुरु समीपे सविनय वर्ते. २ बडे पुरुषोंके छांदे वर्ते. ३ ज्ञानादिक कार्य अर्थे विनय करे. ४ ज्ञान देनेवालाका विनय करे. ५ आरतवंतको समाधि उपजावे. ६ देश—काल देखके प्रवर्त्ते. सर्व काम शुद्ध सरळ भावसे अप्रमाद पणे, किसीके छलमें नहीं आवे इसी तराहसे करना, उस्को लोक व्यवहार विनय कहते हैं.

(३) वयावच्च तपः—अर्थात् सेवा भक्ति करके साता उपजावे. १ ज्ञानादिक पांच आचारके धरणहार आचार्यजीकी, २ बहु सूत्रके जाणने वाले उपाध्यायजी की, ३ दुष्कर तपस्या करने वाले तपस्वीजी की, ४ नवदिक्षित मुनीकी ५ रोगयुक्त मुनीकी, ६ पंचमहाव्रतादि गुणयुक्त साधूजीकी, ७ तीन प्रकारके स्थीवरकी, ८ चतुर्विध संघकी, ९ एक

गुरुके बहुत शिष्य होवे ऐसे कुलकी और १० समु-
दायके साधुओंकी सेवा करके हर तराहसे साता
उपजावे.

(४) सज्झाय तपः—सज्झाय अर्थात् ज्ञाना-
भ्यास=शास्त्रका अभ्यास करना. इस्के ५ भेद हैं.१
" वायणा " अर्थात् गुरु आदिक गीतार्थ बहुसूत्री
की पास विनययुक्त सूत्रादिककी वांचणी लेनी.
२ " पूछणा " जो वांचणी ली होवे उस्को स्थिर चि-
त्तसे विचारते विचारते कुछ संदेह पडे तो गुरुको हा-
थजोड नम्र भावे पूछना. ३ " परियट्टणा " पूर्वे जो
विधियुक्त वांचणी ले कर और पूछणा (पृच्छना) से
ज्ञान संपादन किया है उस्को पुनः पुनः विचारना.
४ " अणुपेहा " अर्थात् उपयोग सहित परियट्टणा
करना ५ " धम्मकहा " पूर्वोक्त विधिसे जो शुद्ध
ज्ञान संपादन किया है उस्को बहुत लोगोंकी सम-
क्ष प्रगट करना अर्थात् प्रकाशना, धर्मोपदेश करना.

(५) ध्यान तपः—ध्यान शब्दका मूल धातु
" ध्यै " है, जिस्का अर्थ अंतःकरणमें विचार कर-
नेका है. अंतःकरणका विचार कभी शुभ होता है,
कभी अशुभ भी होता है.
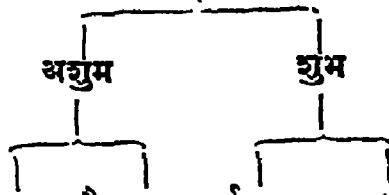
आर्तध्यान ४ प्रकारसे ध्याते हैं:—१ अमनोग्य (खोटे) शब्द–रुप–गंध–रस–स्पर्शका वियोग चिंतवना सो. २ मनोग्य [अच्छे] शब्द–रुप–गंध–रस–स्पर्शका संयोग चिंतवना सो. ३ ज्वरादिक रोगोंका वियोग चिंतवना सो. ४ सुखदायी कामभोगका संयोग चिंतवना सो.*

रौद्रध्यान ४ प्रकारसे ध्याते हैं:—१ हिंसा करनेका विचार करे. २ झूठ बोलनेका विचार करे. ३ चोरी करनेका विचार करे. ४ अमुक प्राणी दुःखी होवे ऐसा चिंतवे.+

---

* आर्तध्यान वाले मनुष्यके ४ लक्षण हैं—(१) कवणेया =मोटे शब्दसे आक्रंद करे; (२) सोयणया=सोच (चिंता) करे, (३) तिप्पणया=अश्रुपात करे, (४) विलवणया=हाय श्रास और आही आही शब्दका उच्चार करे

+ रौद्रध्यान वाले मनुष्यके ४ लक्षण हैं—(१) उषणा दोषा= हिंसादिकका चिंतवन करे, (२) बहुल दोषा=हिंसादि चारोंका बारंवार विचार करे, (३) अणाण दोषा=कोक शास्त्रादि अज्ञानीओंके शास्त्रोंका अभ्यास करे, (४) अमरणांत दोषा=मृत्यु तकभी पापका पश्चाताप करे नहीं

धर्म ध्यानः—धर्म ध्यानकी ४ चिंतवणा, ४ लक्षण, ४ आलंबन और ४ अनुप्रेक्षा हैं.

धर्म ध्यानकी ४ चिंतवणाः--१ आणाविजय= वीतराग देवकी आज्ञा चिंतवे कि "परमेश्वरने तो आरंभ परिग्रह खोटा कहा है और हे जीव! तूं तो लुब्ध हो रहा है तो तेरी गति कैसी होगी? अब तो उस्का त्याग कर." २ अवाय विजय=ऐसा चिंतवे कि "मैं इस जगतमें रागद्वेषके बंधनसे बंधा हुवा हूं इस लिये चतुर्गतिमें नाना प्रकारकी विटंबना होती है. अब हे जीव! इन बंधनको तोडके सुखी हो." ३ विवाग विजय=ऐसा चिंतवे कि, "चेतनको शुभ और अशुभ दो प्रकारके कर्मों और उन्के शुभ और अशुभ विपाक [फळ] रुपी सोना और लोहाकी बेडी लगी हुइ है. जब दोनु टुटेगी तब मोक्ष मीलेगी".४ संठाण विजय= लोकका संठाणका चिंतवन करे कि, "वीतराग देवने कहा है कि दो पांव चोडे कर कमरको हाथ लगा कर खडा होवे इस आकार लोकका संठाण है. दोनो पांवके बीचमें नर्कका स्थान; कमरके स्थान मध्यलोग असंख्यात द्वीप समुद्र; पेटके स्थान ज्यो-

तिषी; छातीके स्थान बार देवलोक; गलेके स्थान नवग्रीवेग; मुखके स्थान अनुत्तरविमान; लिलाटके स्थान सिद्धशिला उपर सिद्ध भगवंत, इत्यादिकका चिंतवन करे.

धर्मध्यानके ४ लक्षणः—(१) आणारुइ=परमेश्वरने जो शास्त्रमें क्रिया फरमाइ है वो अंगिकार करनेकी रुचि जगे. (२) निसगरुइ=जीव—अजीव—पुण्य—पाप—आश्रव—संवर—निर्जरा--वंध--मोक्ष इन नवको बरावर जाणे. (३) उपदेश रुइ=गुरुआदिकका सदुपदेश सुणनेकी रुचि जगे. (४) सुतरुइ =द्वादशांगी वाणी वांचनेकी—सुणनेकी रुचि जगे.

धर्म ध्यानके ४ अवलंवन [आधार]ः—वायणा, पूछणा, परियट्टणा, धम्मकहा. [इन्का अर्थ पहीले लीखा गया है.]

धर्म ध्यानकी ४ अनुप्रेक्षाः—(१) अणिच्चाणुपेहा=ऐसा विचारे कि "इस जगतमें जो पूद्गलीक पदार्थ हैं सव अनित्य हैं. हे जीव! तूं तेरे मन में शाश्वता मानके वैठा है परंतु अब तूं उस्पेसे प्रीति उतार और ज्ञानादि त्रीरत्नकी साथ प्रीति जोड

तो सुखी होगा." (२) असरणाणुपेहा=ऐसा विचारे कि "हे आत्मन्! तेरेको इस जगतमें कोइ शरण(आधार)भूत नहीं है. तेरे स्वजन मित्रादि हैं, सो तो जव लग तेरे पुन्य पोते हैं तव तक तेरी खवर पूछते हैं. परन्तु जव तुं निर्धन वनेगा—दुःखी वनेगा तव कोइ तेरा नहीं वनेगा. एक वीतराग देवका शरण ही सच्चा है."(३) एगताणुपेहा=ऐसा विचारे कि, "हे जीव ! तूं अकीला आया, अकीला है और अकीला जानेवाला है. इस शरीर और लक्ष्मी आदिक जड है, अनित्य है; और तूं तो चैतन्यरुप और नित्य है. तेरा तो आत्मीक गुण ज्ञानादि त्रीरत्न ही है. उन्को तुं भूल गया है तो अव उन्की साथ मित्राचारी कर." (४) संसाराणुपेहा =ऐसा विचार करे कि, "चतुर्गति रुप संसारमें हे जीव ! तेने महा दुःख सहन कीये हैं. अव कुछ पुण्य योगसे सद्धर्मकी प्राप्ति हुइ है. अव तो जरा चेत और वाह्य आत्माका दमन कर अंतर प्रकृतियोंको मार जिनेश्वर भगवानकी आज्ञा मुजव क्रिया कर."

शुक्ल ध्यानः—शुक्ल ध्यानकी ४ रीत, ४ लक्षण, ४ अवलंवन और ४ अनुप्रेक्षा हैं.

शुक्ल ध्यानकी ४ रीतः—पुहतवियर्केसवी-यारी=अनंत द्रव्यरुप यह जगत है इसमें एक ही द्रव्यका स्वरुप ग्रहण कर उस्की उत्पत्ति, क्षय और जूदे जूदे पर्याय उन्को शब्दसे अर्थमें और अ-र्थसे शब्दमें चिंतवन करे. (२) एगतवियकअ-वियारी=उत्पत्ति आदि पर्यायके जित्ने द्रव्य हैं उन्का एकत्रपणा—अभेदपणा तथा आकाशादि प्र-देशका अवलंबनपणाका विचार करे. (३) सुहुम क्रिया अपडवाइ=सर्व क्रियामें अति सूक्ष्म क्रिया स-मय मात्र रहणहार एक इर्यावही है वो जिन्के रही है और अप्रती पाती ज्ञानका अवलंबन किया ऐसे तेरमे गुणस्थानके धणी वृधमान प्रणामी समय समय जिन्के विशुद्ध प्रणामकी वृद्धि होती है ऐसे विचारवंत केवली भगवान.(४) समुछिन्न क्रिया आनियट्टी=स-र्वथा प्रकारे क्रियाका क्षय करे. अयोगी सेलेसी पर्व-तकी तरह स्थिर इस ध्यानयुक्त पांच लघु अक्षरका उच्चार प्रमाणे कालान्तर निराबाधपणे अचल अक्षय ऐसे मोक्षस्थानको प्राप्त होवे सो चौदहवें गुणस्थान-कके धणी अजोगी केवली भगवंत.

शुक्ल ध्यानीके ४ लक्षणः—(१) विवेगा=जी-

वसे शरीर भिन्न है, जैसे कि तिलसे तेल भिन्न, दूधसे घी भिन्न है. ऐसा समझ कर शरीरपे ममता न करे (२) विउस्सग=बाह्य और अभ्यंतर सर्व संगसे निवर्ते. (३) अवठे=नाना प्रकारके उपसर्ग सहन करे परंतु चलायमान न होवे. (४) असमोह=अच्छी या बुरी चीजको देखकर रागद्वेष न करे.

शुक्ल ध्यानीके ४ आलंबनः—क्षमा, निर्लोभता, ऋजुता, मृदुता.

शुक्ल ध्यानीकी ४ अनुप्रेक्षाः—[१] अवायाणुपेहा=ऐसा विचारे कि " प्राणातिपात--मृषावाद-अदत्तदान-मैथुन-परिग्रह : इन पांच आश्रवों जीवको दुःख देनेवाले हैं इन्को छोडेंगा तब सुखी होगा." [२] अशुभाणुपहा=ऐसा विचारे कि, "इस जगतमें जित्ने पुद्गलीक पदार्थ और सुख हैं सब अशुभ हैं " [३] अनंत वितीयाणुपेहा=" इस जीवने अनंत पुद्गल परावर्त्तनमें अनंत भवोंकी श्रेणि करके अनंत परिताप सहन किये हैं " [४] विपरिणामाणुपेहा=ऐसा चिंतवे कि, "वस्तुका स्वभाव क्षणभंगुर है. जो वस्तु अबी सुंदर दीखती है वो क्षिण मात्रमें बिछड जाती है. वस्तु मात्र मेघ-

धनुष्य और औस [झाकळ] का बिंदु समान है."

(६) "विउसग्ग" (काउसग):—विउसग अर्थात् खोटी वस्तूको वोसराना-छोडना.उस्के २भेद हैं. (१) द्रव्य विउसग और (२) भाव विउसग. द्रव्य विउसगके ४ भेदः—१ शरीर विउसग= शरीरकी विभूषा नहीं करनी--केसादिक नहीं समारना इत्यादिक. २ गणविउसग=समुदायका त्याग करे अर्थात् जो साधू ज्ञानवंत, क्षमावंत, जीतेन्द्रिय, अवसरका जाण. धीरवीर, पूर्ण श्रद्धावंत होवे ऐसा साधू गुरुकी आज्ञा लेकर अकीला विचरे. ३ उपद्दी विउसग्ग=वस्त्र-पात्रादि कमी करे. ४ भत्तपाण विउसग=यथाशक्ति नौकारसी प्रमुख तप आचरके आहारपाणीका त्याग करे, अवसर आये संलेपणा करे.

भावविउसग्गके ३ भेदः--१ "कषाय विउसग्ग"=क्रोधादिक चार कषायका त्याग करे; २ "संसारविउसग्ग"=जिन कर्मोंसें चौगातिमं* भ्रमण

---

* नर्कगतिमें जानेके ४ कारण.-(१) महा आरंभी काम (२) महा परिग्रही काम, (३) मदीरापान और मांसभक्षण, (४) पचेन्द्रि जीवोंका संहार. तिर्यंच गतिमें जानेके ४ कारणः-(१) दगा, (२) विश्वासघात, (३) झूठ वचन, (४) खोटे तोल--माप इत्यादि मनुष्य गतिमें जानेके ४ कारण-(१) भद्रिक

होता है इन कर्मोंको त्यागे. ३ "कम्माविउसग्ग" जिस करके जीव संसारमें रुले उसे कर्म कहना. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनी, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अंतराय इन ८ कर्मोंका त्याग करे.

इसी मुजब तपके विविध भेद हैं. तप है सो कर्मरुप पाहाडको विदारनेके लिये वज्र समान है. पाप रुप अंधकारका नाश करनेमें सूर्य समान है. कामशत्रुको मारनेके लिये सिंह समान है. तृष्णाको काटनेका समर्थ हथीआर है. धर्म वृक्षको पानी पानेवाले मेघ है. इस लिऐ आत्मार्थी जीवोंको लाजीम है कि कर्मकी निर्जराके अर्थे तप अवश्यमेव करना.
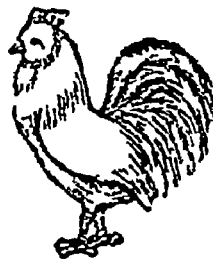
स्वभाव, (२) विनय गुण, (३) दयालुपण, (४) गुणवंतपे प्रेम

देव लोगमें जानेके ४ कारण –(१) सयम पाले परतु शिष्यशरीरपे ममता रखे (२) श्रावकपणा पाले (३) बालतपस्वी होवे (४) अकाम निर्जरा करे

प्रकरण १.

चेइय—चैत्य—ज्ञान.

"पढमं नाण तवो दया' (प्रथम ज्ञान, पीछे दया)-दशविकालिकसूत्र

*

" विद्या विहीनः पशु "(विद्या विनाके नर पशु)—भर्तृहरी

*

"It is better to be unborn than untaught, for ignorance is the root of all evils"—

नहीं पढनेसे नहीं जन्मना अच्छा है क्यु कि अज्ञानता ही सब दुःखोका कारण है"—प्लॅटो.

अंधारी गुफामें जानेवाले मनुष्य दीपक लेकर जाते हैं. विना दीपक जानेवालेको रस्ता नहीं दीखता है और भटक भटकके मर जाते हैं. ऐसे ही इस संसारकी गुफामें जो प्रानी आये हैं उन्को रस्ता दीखानेवाला ज्ञानकी अवश्य जरुरत है.

चेइय शब्दके ५५ अर्थ और चत्य शब्दके ५७ अर्थ मीलके ११२ अर्थ होते है इन सब अर्थो और व्याकरणशास्त्रीकी शाक्षीके लिये वांचो "सम्यक्त्व चन्द्रोदय" ग्रंथ श्रीमती पार्वतीजी सतीजी कृत किम्मत रु १.)

बिना ज्ञान वो बेचारे आधि व्याधि उपाधिमें प-डकर मर जाते हैं. ज्ञान है सो ही दीव्य तेजो-मयी दीपक है.

इस विषय के सम्बन्धमें में ५ बातोंका विवे-चन करुंगा. (१) अज्ञानसे क्या हुआ और क्या होता है? (२) ज्ञानसे क्या होता है? (३) ज्ञान के भेद. (४) ज्ञानी कीस्को कहना ? और (५) ज्ञानका फैलावके लिये क्या करना ?

इस आर्यावर्त्तकी जाहोजलाली एक वख्तपर ऐसी थी कि उस्की बराबरी कोइ देश नहीं कर स-क्ता था. विविध प्रकार के हुन्नर, कला, व्यापार च-ल रहा था. क्रोडपतिओं भी बहुत थे. धर्मिष्ठ और शूरवीर लोग भी असंख्य थे. वोही देशकी आज स्थिति कैसी हुइ है ? देखिये ! आज बहुत ही आ-र्य लोगों भूखसे मर जाते हैं, बहुत ही लोगों कहते हैं कि बिना नौकरी और कोनसा काम हम करें? सब हुन्नर तो पश्चिमकी प्रजामें चल गये. इधर तो गुलामी, भूख, अज्ञानता, और व्हेमों ही रह गयें. उस्का सबब एक अज्ञान ही है. कभी अज्ञान नहीं होते तो लोगों कुसंपमें पडते नहीं, स्वदेशी माल

छोड विदेशीय माल ले कर स्वदेशकी लक्ष्मीको परदेशमें भेजते नहीं, मूर्ख भिक्षुकोंके बहेकाये हुए व्हेमोंमें फसाके अपने देशको डुबाते नहीं, और मिथ्यात्वसेवनमें अपनी आत्माको फसाते नहीं. अज्ञानसे क्या अनिष्ठ नहीं होता है? देखीये. अज्ञानसे चोरी, अज्ञानसे झूठ, अज्ञानसे व्यभिचार, अज्ञानसे आत्मक्लेष और अज्ञानसे ही नर्कवास होता है. मोह-मायाका जोर भी तब तक चलता है, कि जब तक मनुष्य अज्ञानको पकड रहा है.

कितनेक बेचारे संसारमें दुःख देख कर त्यागी हो जाते हैं परन्तु अज्ञानताका तो त्याग नहीं करते हैं. बाह्य त्यागसे क्या होता है ? अज्ञानताका त्याग नहीं करनेसे वो बेचारे वहां भी दुःख पाते हैं और विशेषमें अन्य हजारों मनुष्योंको दुःखी करते हैं. अज्ञानताके सबबसे वो वेरागी नहीं परंतु बेरागी बने जाते हैं.ऐसे लोग स्वकल्पित धर्मका धंधा लेकर अपना गुजरान चलाते हैं.परंतु हाय अफसोस! जेसे उपदेश करनेवाले अज्ञानतासे हिंसक उपदेश करते हैं ऐसे हि उपदेश सुननेवाले भी अज्ञानताके प्रताप ही उसको ग्रहण कर लेते हैं. आत्मिक धर्मको छोड के

हिंसक धर्मका उपदेश करनेवाले, इधर उधरके दो चार श्लोक कंठाग्र करके शास्त्रपारंगामी कहलाने वाले, लक्ष्मीको रखनेवाले, संसारी जनोंकी साथ खटखटमें पडने वाले, क्लेप कराने वाले, आपवडाइ करनेवाले, रेलगाडीमें मुसाफरी करनेवाले अधम वेषधारीओंको मानने—पूजनेका कारण भी अ-ज्ञानता ही है. चालाक आदमी तो अवश्य ही वि-चार करेगा की विना आचार-विचार और विना दया, और विना मैत्रीभाव किसीको साधु किस तराहसे कहा जावे?

ज्ञानसे क्या होता है?

ज्ञानसे क्या होता है वो जाननेकी इच्छा होवे तो देखो जापान देश. १०—१५ वर्षमें उस्की स्थि-ति कैसी वदल गइ है? धन, हुन्नर, विद्या, वल और तेज कितना हो गया है सो विचारो. इन स-वका कारण शीर्फ ज्ञान ही की वृद्धि है. अंग्रेज लो-ग कि जो नग्न फीरते थे और मुखपे मिट्टी लगाते थे वो लोग आज सवसे वडे हो गये हैं और आर्या-वर्तपे राज चलाते हैं उस्का सवव भी विद्या ही है.

सांचा, तार, फोनोग्राफ सव विद्याका ही प्र-

ताप है, इग्लंडके लोग चेम्बरलेनके वशमें थे और हिंदके लोग दादाभाइका नामसे फीदा फीदा हो जाते हैं उस्का सबब भी उन्का ज्ञान ही है. तीर्थंकर भगवानको जो जो प्राणी देखते वो सब अधीन बन जाते उस्का सबब भी ज्ञान ही है.

आचार-विचार सबका आधार ज्ञानपे है. श्री उत्तराध्ययन सूत्रमें कहा है किः—

नाणं च दंसणं चेव, चरितं चतवो तहा।
एयमग्ग मणुपत्ता, जीव गच्छंती सुगइ॥

अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप इन चारोंको अनुक्रमे आराधनेसे जीव मोक्ष रुप सुगतिमें जाता है. इस्में स्पष्ट कहा है कि अव्वलमें ज्ञान चाहिये. ज्ञान होवे तो जीव-अजीवका भान होगा, दयाका रस्ता दीखा जायगा, और सुख दुःख के कारन समझे जायगे. इस्से किस्को त्यागना और किस्को ग्रहण करना उस्का भान होगा और दर्शन—चारित्र और तपका स्विकार किया जायगा, कि जो मोक्षदाता है.

ज्ञानके भेद.

ज्ञानके और विद्याके २ प्रकार हैः—(१)

लौकिक और (२) लोकोत्तर. (१) लौकिक ज्ञानमें तरह तरहके हुन्नर, पिंगल, गणीत, व्याकरण, खगोल, भूगोल, रसायण, वैद्यक, वाद्य आदिकका समावेश होता है और (२) लोकोत्तर ज्ञानमें आत्माका उद्धारकी विद्याका समावेश किया जाता है. जीव क्या, अजीव क्या, स्वर्ग-नर्क-मोक्ष क्या, मोक्षका रस्ता क्या, इन सब बातोंका समावेश लोकोत्तर विद्यामें होता है.

ज्ञानके पांच भेद भी कहे जाते हैंः—(१) मतिज्ञानः—वस्तूका जैसा स्वरुप है वैसा ही दर्शावे उसे 'मतिज्ञान' कहते हैं. उस्के १४ भेद हैं. श्रोत-चक्षु-घ्राण-रस और स्पर्श यह पांच इन्द्रि करके व्यंजनका शब्दका ग्रहण करे सो 'व्यंजनावग्रह' और अर्थका ग्रहण करे सो 'अर्थावग्रह.' ऐसे ५×२=१० भेद. और उत्पातिक बुद्धि*, विनय बुद्धि, कम्मिया बुद्धि और प्रणामिया बुद्धि मीलके १४ भेद.

---

* 'उत्पादिक बुद्धि' अर्थात तात्कालिक बुद्धि समय सूचकता, शोधक बुद्धि विनय बुद्धि अर्थात विनय कर करके जो ज्ञान संपादन करे सो. कम्मिया बुद्धि अर्थात कार्य करतेर अनुभवसे जो बुद्धि आवे सो. प्रणामिया बुद्धि अर्थात ज्यों ज्यों वय प्रणमती जाय त्यों त्यों बुद्धि बढे किंवा घटे सो.

(२) 'श्रूत ज्ञान' अर्थात् उपदेश सूनके अथवा शास्त्र पढनेसे जो ज्ञान संपादन किया जावे सो. उस्के भी मतिज्ञानकी तरह १४ भेद हैं. और जीधर श्रुतिज्ञान है उधर मतिज्ञान भी होता है.

(३) अवधिज्ञानः-इस ज्ञान वाले मनुष्य जघन्य अंगुलके असंख्यातमें भाग उत्कृष्ट संपूर्ण लोक तथा लोक सरीखे असंख्याता खंड़वे अलोकमें देखते हैं अर्थात् रूपी पदार्थको देख सकते हैं. इस कालमें पहीले दो जातके ज्ञान है और अवधिज्ञान तो कुछ थोडा कोइ मनुष्यको आयुम्यके अंतमें आता है.

(४) मनःपर्यव ज्ञानः—इस ज्ञानवाले जीव मनकी बात जान सकते हैं. उस्के २ भेद हैं. (१) ऋजूमति सो किंचित उणा अढाइ द्वीपकी और(२) विपुलमति सो संपूर्ण अढाइ द्वीपके जो संज्ञी पचेन्द्रिय जीव हैं उनके मनकी बात जाणे. यह सब फक्त साधूजीको ही हो सकता है.

(५) केवल ज्ञान—इस ज्ञानवाले जीव सर्व: द्रव्य–क्षेत्र–काल–भावकी बात यथातथ्य जाणते हैं छद्मस्थपणेसे निवर्तके तेरहवें गुणस्थानमें आने

वालेको यह ज्ञान होता है.

इन पांचो ज्ञानका विस्तारपूर्वक कथन श्री नंदीजी शास्त्रमें है.

ज्ञानी किस्को कहना ?

जो सज्जन है वो तो आत्मार्थी हो के ज्ञान संपादन करता है;वो कुछ वाग्युद्ध के लिये किंवा पेट भराइके लिये शास्त्रोंको कंठाग्र नहीं करते हैं. यदि कोइ मनुष्य जानेगा कि अमुक कार्यसे अमुक लाभालाभ है तो फीर वो अलाभका कार्य कैसे करेगे? ज्ञानकी साथ सर्दहना चाहिये और उस्की साथ तदनुसार आचारशुद्धि भी चाहिये. मराठीमें कहा है कि "व्यर्थ भारी भरो के ले पाठांतर, जोवरी अंतर शुद्ध नाहीं."अर्थात् जब तक अंतःकरण शुद्ध नहीं हुआ तब तक सब ज्ञान व्यर्थ है.ज्ञान और क्रिया दोनू साथमें होनेसे मनुष्य शोभता है. व्यवहारमें भी देखो ! 'बेकन' बडा भारी पंडीत और विचक्षण आदमी था. कहते हैं कि ऐसे चालाक नर इस जमानेमें कोइ नहीं है. परंतु उस्का दील और आचार शुद्ध नहीं था. इस लिये एक अंग्रेज कविने कहा है कि "Bacon the *wisest* and *meanest* of mankind'

अर्थात् "मनुष्यमें सबसे बुद्धिमान और सबसे तुच्छ बेकन." ऐसे ही कितनेक लोग वीतराग देवके परुपे हुए सूत्रोंका ज्ञान संपादन करते हैं; परन्तु आचार भ्रष्ट रखते हैं और कहते हैं कि 'ज्ञानीको तो कर्म लगते ही नहीं हैं और ज्ञानी तो व्यभिचारादि करते हैं उस्में भी कुछ गुप्त उत्तम हेतु रहा है!' अब देखिये! कैसी भ्रष्टता! इससे तो सरळस्वभावी अल्पज्ञानी सदाचारी लोग बहुत उत्तम हैं. अफसोसकी बात है कि कितनेक ऐसे बाह्य ज्ञानीओंने बहुत जनोंको फसाये हैं और "धर्म क्रिया तो शुष्क है इस्से क्या होता है?" ऐसा समझा कर, धर्मसे भ्रष्ट बनाये हैं. बडा भारी जुलम तो यह है कि कितनेक साधु लोग भी ऐसे दंभीके फंदेमें फसाये हैं.

सच्चा ज्ञान वालेके १० लक्षण हैं:—

अक्रोध वैराग्य जितेन्द्रि येषाम्,क्षमा दया सर्वजनप्रियाः ।
निर्लोभ दाता भय शोक मुक्ता, ज्ञानी नराणां दश लक्षणानि ॥

(१) अक्रोध, (२) वैराग्य, (३) जितेन्द्रियपणा, (४) क्षमा, (६) सर्व जनोंको प्रिय लगे ऐसी वर्त्तणुक,(७)निर्लोभता,(८)दान (विद्या दानादि),(९) भय रहीतपणा,(१०)शोक रहितपणा.

और भी कहा है:—

गइ वस्तु सोचे नहीं, आगम वांच्छे नाही;
वर्त्तमान वर्त्ते सदा, सो ज्ञानी जग मांही.

ज्ञानका फैलावके लिये क्या करना ?

अब में बताउंगा कि ज्ञानका फैलाव के लिये हरएक मनुष्यका क्या कर्त्तव्य है.

संसारी जनोंका कर्त्तव्यः—सूत्रमें बहुत ही जगाह श्रावकोंके संबंधमें लीखा है कि, "अभि गया जीवा जीव उवलद्धे पुन्य पावे, आसवर संवर निज्जरे किरिया अहिगरण बंध मोख कुसल" अर्थात् श्रावक कैसे थे कि जीवाजविको पीछानते थे, पुण्यपापके फलको जानते थे, आश्रव–संवर–निर्जरा–क्रिया—आधिकरण–बंध—मोक्षके ज्ञानमें कुशल थे. और राजमतीजी को 'सीलवता बहुसुया" अर्थात् सीलवती और बहुत सूत्रकी जाणकार कही है. इस्से समझा जाता है कि पहिलेके बख्तमें स्त्रीयों और पुरुषों शास्त्रोंका ज्ञान संपादन करनेके लिये उमंग धराते थे. आज तो लौकिक ज्ञानका भी फैलाव कमी है तो लोकोत्तर ज्ञानकी तो बात ही क्या करनी ? दोचार सात वर्ष मातृ भाषा और इंग्लीश भाषा पढ ली तो पंडीत हो

गया ! हुन्नर, धंधाका शिक्षण कमी हो गया और धर्मज्ञानका तो शिक्षण बहुत ही कमी हो गया. इस लिये देश और धर्मकी उन्नातिके लिये जो जो प्रकारके ज्ञान अवश्यका है उस्का फैलाव करनेके लिये प्रत्येक संसारीका कर्त्तव्य है कि अपने घरके लडके—लडकी सबको अच्छी तराहसे पढावे और धर्मज्ञ बनावे; विद्याशालाओं और पुस्तकशाला-ओंका स्थापन करे, अच्छे ग्रंथकारोंको उत्तेजन देवे, जगाह जगाह धर्मोन्नतिका भाषण देने वालेको म-दद देवे, विद्या और धर्म संबंधी मासिक पत्रो—साप्ताहिक पत्रोंको उत्तेजन देवे, मुनीराजोंको ज्ञा-नकी वृद्धिके लिये सूचना करे, उन्के लिये शास्त्रा-भ्यासकी जोगवाइ कर दे, वगेरा, वगेरा.

त्यागी पुरुषोंका कर्त्तव्य यह है किः—एक पल भी व्यर्थ नहीं गुमावे परंतु सद्पुरुषोंकी सेवामें और ज्ञानकी प्राप्तिमें जीतना पुरुषार्थ हो सके उत-ना करे. सूत्र आदिका ज्ञान मीलनेसे भी आपबडाइ और मिथ्याभिमान न करे परंतु छोटा ही बन रहे और विशेष ज्ञानका खपी होकर ज्ञान और अनुभव को ढुंढता ही फीरे. अपने ज्ञान और सदाचारसे सं-

सारी जनोंको भी तारे; पूर्वके महात्माओंके रचे हुए पुस्तकोंका संशोधन करे--करावे और उन्को प्रसिद्धिमें लावे. स्वमतकी साथ पर मतके शास्त्रोंका भी अभ्यास करे और उन्की स्हायसे संसारी जनोंका मिथ्यात्वको छेदे. मनुष्य स्वभाव कैसा है, कैसे वचनसे उस्पे अच्छी असर होती है, उस्का अनुभव करे और भाषणकला शीखे. न्याय-तर्क आदि शीखे. साधुके शिरपे कर्त्तव्यका इतना बोजा है कि जो कोइ सच्चा साधू होवे तो उस्को आहार लेनेका भी वख्त न मीले.

जब साधुओं और संसारीओं इस तराह अपने कर्त्तव्य समझ कर कर्त्तव्यपरायण होंगे तब इस आर्यदेश और आर्य धर्मकी उन्नति होगी. ज्ञानका फैलाव सब जगामें होनेसे कुसंप और क्लेष आप ही चले जायगे, मिथ्यात्व आप ही अदृश्य होगा, आलस्यका स्वयमेव नाश होगा और मनुष्यत्व और आत्मज्योतिका प्रकाश होगा.

प्रकरण १०.

बंभचेर—ब्रह्मचर्य.

वेदपठन, कविचातुरी, सब बातां हैं स्हेल;
आत्मचर्चन, इन्द्रिदमन, कामजीतन मुश्केल.

* *
*

दर्शनात् हरते चित्तं, स्पर्शनात् हरते बलं।
संभोगात् हरते वीर्यं, नारी प्रत्यक्ष राक्षसी॥

* *
*

Our passious play the tyrants in our breasts,—Pers.

सब जन्मोंमें मनुष्यजन्म ही मोक्ष साधना-के लिये उपयोगी है और मनुष्यजन्ममें भी वीर्य बहुत उपयोगी है, क्युं कि उस्की स्हायसे ही सब प्रकारके कार्य होते हैं. धर्म या कर्म, पुण्य या पाप सबमें वीर्य चहीता है. वीर्यका व्यय जैसे कार्यमें किया जाता है ऐसा उस्का फल होता है. कोइ

दुष्ट लोग व्यभिचार करके और कोइ स्वस्त्रीसेवन-में अमर्याद हो कर इस अमुल्य खजानेको व्यर्थ गुमाते हैं. कोइ अच्छे मनुष्य उस्का अच्छी तराह-से रक्षण करके ज्ञान—ध्यानादिमें व्यय करते हैं. उन दोनू दृष्टांतमें वीर्यका कुछ दोष नहीं है. वीर्य है सो तो अमुल्य खजाना है, परन्तु उस्का उपयोग अच्छा करेगा तो कल्याणकारी होगा और बुरे काममें उप-योग करनेसे नाशकारक परिणाम भी होगा; जैसे कि लक्ष्मीसे सुपात्र दानादि शुभ कार्य भी हो सकते हैं और मद्यपान-विषपानादि बुरे कार्य भी हो सकते हैं.

जैसे बिना लक्ष्मी संसारी जनों निस्तेज दी-खते हैं ऐसे ही बिना वीर्यके लोग कमजोर, कम-अक्कल और निस्तेज दीखते हैं. व्यापार, रमतग-मत, ज्ञानाभ्यास, तप, जप, ध्यान आदि सबमें वीर्यकी जरूरत है. इस लिये सुखके आभिलाषी स-ज्जनोंको लाजिम है कि वीर्यका अच्छी तराहसे र-क्षण करना.

कितनेक लोग वीर्यको दुष्ट (अर्थात् व्यभि-चारी) विचारोंमें गुमाते हैं और कितनेक दुष्ट (अर्थात् व्यभिचारी) कार्यमें गुमाते हैं. लक्ष्मीका

दुरुपयोगसे वीर्यका दुरुपयोग बडा भारी गुन्हा है और बहुत हानीकारक है.

दुष्ट (अर्थात् व्यभिचारी) विचारोंका जन्म दुष्ट सोबतसे, रागरंग—खेल—तमासा—रंगीले नाटक आदिकको देखनेसे, विषयी कथाओं और काव्यों बांचनेसे, नग्न चित्रोंको देखनेसे, और स्त्रीयोंको वारंवार निहालनेसे होता है. इस लिये जो लोग अपना अमुल्य वीर्यखजानाका रक्षण करनेकी दरकार करते हैं उन्को लाजिम है कि इन सब पुरुषों और चीजोंसे दूर ही रहना.

दुष्ट (अर्थात् व्यभिचारी) विचार थोडे वख्तमें व्यभिचारी कार्यका रुप लेता है, अर्थात् मनुष्य व्यभिचारी हो जाता है. दो प्रकारके पुरुषोंको व्यभिचारी कहते हैं. (१) स्वस्त्रीमें अत्यंत रक्त होकर अप्रतिबद्ध हो जावे ऐसे लोग; और (२) परस्त्रीगमन करनेवाले लोग.

अफसोसकी बात है कि कितनेक लोग स्त्रीको विषयसेवनका सांचा तूल्य मानते हैं. वंशवृद्धि और विषयतृप्ति ही जिस्का कूल आशय है ऐसे जनोंको जानना चाहिये कि, सज्जनों लग्न

करते हैं सो संसारव्यवहार चलानेमें विश्वासु मित्रकी जरुरत होनेके लिये करते हैं. स्त्रीको गृहकार्य सोंप कर आप फुरसद लेकर परमार्थ और धर्मकार्य में चित्त लगाते हैं.

स्त्रीको देखनेसे चित्तका, स्पर्श मात्रसे बलका, और संभोगसे वीर्यका हरण होता है; इस लिये नारी प्रत्यक्ष राक्षसी है. परन्तु जो संसारी जीव विषय वृत्तिको अंकुशमें रख कर उस्की स्हायसे धर्म ध्यानमें चित्त लगाते हैं वो 'भाव साधू' है.

विषयरागी लोगका शरीर क्षीण हो जाता है (भर्तृहरीने कहा है कि 'भोगे रोग भयं'), चित्त परतंत्र रहता है—कामकाजमें नहीं लगता है, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, लाज शरम नष्ठ होती है, पुत्र—मित्र—गुरु आदिक कोइ प्रिय नहीं लगते है, और मनुष्यत्व अदृश्य हो जाता है. इस लिये इस कामदेवको मदन (मद उपजाने वाला), मन्मथ (मनका मथन करनेवाला), मार (मारनेवाला), प्रद्युम्न (उन्मत्त करनेवाला) इत्यादि* नाम दिये जाते हैं.

मदनो मन्मथो मार प्रद्युम्नो मीनकेतन ।
कन्दर्पो दर्पकोऽनंग. कामः पंचशरः स्मर. ॥
शम्बरारिर्मनासिज कुसुमेषु रमन्यज ।
पुष्पधन्वा रतिपतिर्मकरध्वज आत्मभूः ॥

इस लिये सुज्ञ जनोंको लाजिम है कि अपनी पत्नीकी साथ भी मितव्ययी होना. मितव्ययी आदतको टिकानेके लिये कितनीक चाबीओं [Keys] इधर लिखी जाती हैं:—

(१) हे जीव! तूं जाजरुर (संडास) में जाता है तब ज्यादे वख्त उधर ठेरनेका तुझे पसंद है?

(२) क्या भोग विलासमें ही सब आनंद आ रहा है? कुदरतके सुंदर स्थलोंका दर्शन, उत्तम पुस्तकोंका पठन, सत्पुरुषोंकी सोबत, दुःखी जनोंको मदद: इत्यादि कार्यसे जो आनंद होता है उस्की आगे विषय सुख कुछ गिनतीमें नहीं है. और भी, भोग विलास जितनी वख्त होता है इतनी वख्त ताकाद घटती जाती है. परन्तु उक्त कार्योंसें जो आनंद होता है वो तो ज्युं ज्युं ज्यादे मीले त्युं त्युं ताकाद वढती जाती है.

(३) यह जन्म पूर्व जन्म और पश्चात् जन्मकी सांकळ तुल्य है. उस्को क्षुद्र विषय सेवनमें गुमाने वाले मनुष्य मूर्ख है.

(४) संतोषस्त्रिषु कर्तव्यः । स्वदारे भोजने धने ॥
त्रिषु चैव न कर्त्तव्यो । दाने चाध्ययने तपे ॥

अर्थात् तीन बातोंमें संतोष रखना: (१) स्व

स्त्री (२) भोजन और (३) धन. और तीन बातोंमें संतोष नहीं रखनाः (१) दान, (२) अभ्यास (३) तप.

[५] स्त्रीका शरीर गंदकीसे भरा हुआ है. उस्की अंदर हाड—मांस-श्लेष्म आदि भरे हैं. एक कविने कहा है किः—

नार नरककी खान है; दुरगंध अंग अपार;
ऐसी उनकी देहमें, जैसो कुंड चमार;
जैसो कुंड चमार, जान कर केसे जावे;
उत्तम मनुष्या देह, जानके नरक डुबावे;
भीखन कमैयो भणे, उनसे होत हेरानी,
दुरगंध अंग अपार, नार नरककी खानी.

ऐसे नारी देहकी गंदकीका चिंतवन करनेसे मोह कमी होता है.

[६] विजय शेठ और विजया शेठाणी, सुदर्शन, नेमनाथ, सीता आदिका इतिहास याद करनेसे भी विषय लालसा कमी होगी.

[७] एक वख्त स्त्रीसेवनसे असंख्य समूर्छिम जीवोंकी उत्पत्ति और संहार होता है. पाश्चिमात्य विद्वानोंने इस बातकी खात्री भी की है.

इन सब बातोंका विचार कर सुज्ञ गृहस्थोंको लाजिम है कि स्वस्त्रीसेवनमें भी मितव्ययी होना.

अब मैं परस्त्रीत्यागके लिये दो शब्द क-हुंगा. परस्त्रीसेवन सब अपराधोंमें बडा भारी अ-पराध गीना जाता है, क्युं कि इस्से नीतिका भंग, चोरी, झूठ, आदि बहुत ही दोषों लगते हैं. इस गु-न्हेगारको राजा भी दंड और कैदकी शिक्षा करता है, और लोगों भी उस्की निंदा करते हैं. व्यभिचारीसे धर्म बहुत ही दूर रहता है., तन, बुद्धि, धन, धर्म, आबरु सबका नाश करनेवाले व्यभिचारसे दूर र-हनेके लिये सुंदरदासजीने ठीक कहा है किः—

" अहो मेरे मन मृग ! खोली देख ज्ञान दृग !
" यह बन छोडी कहुं और ठैर चरना !"

सब धर्मोंके शास्त्रोंमें और सब जमाने के लोगोंने व्यभिचारका निषेध किया है; इस ली-ये उससे अवश्य दूर रहना चाहिये. व्यभिचारकी लालचको हठानेकी चावी यह है कि, परस्त्रीका रु-प निहालना नहीं; जिस दृष्टिसे अपनी माता और भगिनीका शरीरको देखते है इस दृष्टिसे सब ओर-तोंको देखना. स्त्रीके लिये यह बात उपयोगी है कि, अपने पतिके सिवाय जितने पुरुषों हैं उन सबमें स्त्री भाव कल्पना. पुरुषमें स्त्रीकी दृष्टि आरोपनेसे विकार नहीं होता है. एक और प्रकारका व्यभिचार है

कि जिस्को 'मानसिक व्यभिचार' कहते हैं. सुंदर स्त्रीको देखनेसे मनको व्यभिचारमें लगाते हैं ऐसे बहुत ही पुरुषों हैं. कायिक व्यभिचारका मूल मानसिक व्यभिचार है. इनके प्रतापसे कितनेक लोग सृष्ठिविरुद्ध कर्मभी शीखते हैं और मनुष्य मीटके पशु बनते हैं. ऐसे मनुष्यको सुधारनेके लिये मिताहार, सत्संग, स्त्रीओंका निवाससे दूर रहना, ज्ञान–ध्यानके ग्रंथोंको पढना, खुल्ली हवामें फीरना: इत्यादि उपायो लेना चाहिये.

इन सब बातों सामान्य संसारीके लिये हुइ. परंतु जो उत्तमोत्तम प्रानी हैं और साधु पुरुप हैं उन्को तो स्त्रीसे तद्दन ही दूर रहना चाहिये. ऐसे पुरुषको श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र " तं बीम्बं भगवतं" अर्थात् भगवानका प्रतिविम्व कहते है. श्री आचारांगजी सूत्रमें कहा है कि "गद्धिए अणुपरियट्ट माणे संधिं विदित्ता इह मच्चिएहिं, ऐस वीरे पसंसिए जे बद्धे पडिमोयए." अर्थात्—"विषयमें गृद्ध लोगों वारवार संसार परिभ्रमण करते हैं. इस लिये जो प्रानी मनुष्यजन्मका अवसर मीला समज कर विपयादिकको त्यागे उस्को पराक्रमी कहा जाता है. ऐसे पुरुषों संसारमें लुब्ध अन्य पुरुषोंको भी बाह्य और अभ्यंतर बंधनसे छुडाते हैं."

इन महात्माओंके व्रत (नियम) के रक्षणके लिये ९ वाड (किल्ले) शास्त्रकारोंने बनाये हैं. (१) "देव-मनुष्य-तिर्यंच जातिकी स्त्री और नपुंशक जीधर रहते होवे उधर ब्रह्मचारीको रहना नहीं चाहिये." यह प्रथम वाड फरमाइ है; क्युंकि बील्ली और मुशक (उंदर) एकही स्थानमें रहेवे तो उंदरकी जींदगी जोखममें रहती है. श्री 'दश वैकालिक' सूत्रमें इतने तक कहा है किः—

हत्थपायपडीच्छिन्नं, कण्णनासविगप्पियं ।
अवि वाससइं नारिं, बंभयारी विवज्जए ॥

जिस स्त्रीके कान, नाक, हस्त और पांव काटे हुए होय और जो १०० वर्षकी डोकरी होय ऐसी स्त्रीका भी विश्वास ब्रह्मचारीको करना नहीं चाहिये.

(२) "स्त्रीके शृंगार, वाग्चातुरी, रुप लावण्य हाव भाव आदिकी कथा वार्त्ता नहीं करना." इस फरमानका हेतु यह है कि ऐसी कथा कामोत्तेजक है. जैसे कि, लिंबू आदि खट्टी चीजका नाम लेनेसे मुखमें पाणी छूटता है, वैसेही स्त्रीकी सौंदर्यादिका वर्णन करनेसे विकार उत्पन्न होता है.

(३) " स्त्रीकी सोबत नहीं करना; जिस आसनपे स्त्री वेठी होय उस स्थानपे बेठना नहीं. (वो उठ जाय पीछे दो घडी पीछे वेठना)." एक डब्बेमें कस्तुरी और लसण रखनेसे कस्तुरीकी वास बीगड जाती है.

(४) " स्त्रीके अंगोपांगको निहालना नहीं (विषयवृत्तिसे देखना नहीं.)" जैसेकि सूर्यकी सामने देखनेसे आंखका विनास होता है वैसे हि स्त्रीके अंगोपांग देखनेसे ब्रह्मचर्यका विनास होता है.

(५) " ब्रह्मचारी पुरुष भींतके अंतरे, टट्टीके अंतरे, पडदे के अंतरे स्त्री रहेती होवे तो उस मकानमें रहेवे नहीं." क्युं कि उस्के शब्द, दंपतिविहार आदि सुनने–देखनेसे काम जागृत होता है.

(६) " साधुपना अंगिकार नाहि किया था इस वख्त स्वस्त्रीकी साथ हांसी-मश्करी-रमत गम्मत क्रिडा आदि जो कुछ किया था उस्को ब्रह्मचर्य अंगिकार किये पीछे याद नहीं करना." जिस्का वमन कर दीया उस्की तर्फ दृष्टि नाहिं करनी चाहिये.

(७) " ब्रह्मचारीको प्राति दिन सरस कामोत्तेजक आहार नहीं खाना चाहिये." क्युं कि, स-

रस आहार कामोत्तेजक है. इससे इन्द्रियों स्वतंत्र ब-
न जाती हैं.

(८) "आहार बहोत नहीं खाना; मिताहारी होना" ज्यादे खानेसे शरीर बीगडता है और वि-
चार शक्ति निर्बळ हो जाती है और नीति-शियल आदि शिथिल होता है. मन भटकता ही फीरता है.

(९) "शरीरकी विभुषा नहीं करना." ठाठ-
माठ करके आकर्षणीय रुप नहीं करना; क्युं कि इससे काम उत्पन्न होता है. साधु जनोंको तो इस लिये स्नान मंजन आदिका भी निषेध है. पुराणमें कहा है कि—

चित्तं समाधिभिः शुद्धं, वदनं सत्य भाषणैः ।
ब्रह्मचर्यादिभिः काया, शुद्धो गंगा विना प्यसौ ॥

अर्थः—जिस्का चित समाधिसे शुद्ध किया गया है, वदन सत्य भासणसे शुद्ध किया गया है, और काया ब्रह्मचर्यसे शुद्ध की गइ है, ऐसा मनु-
ष्य गंगास्नान विना भी शुद्ध है.

इस तराह नववाड विशुद्ध ब्रह्मचर्य व्रतको धा-
रण करने वालेको:—

देवदानवगंधर्वा जक्ष राक्षस किन्नरा ।

वंभयारी नमंसंती दुक्करं जे करंतिते ॥

श्री उत्तराध्ययन सूत्र.

अर्थात्, दुष्कर ब्रह्मचर्य व्रतको धारण करनेवालेको देव, दानव, गंधर्व, जक्ष, राक्षस और किन्नर भी नमन करते हैं.

दश विधि धर्मका बयान इधर खतम होता है. जो मनुष्य उस्को पालता है वो इस जन्ममें निर्दोष सुखी जींदगी गुजारता है, लोकमें मान कीर्त्ति पाता है और उस्की आत्मा शांतिमें ही रमण करती है. और भविष्यमें भी सुखी होता है.

सर्व प्राणी धर्मरागी हो और सुखी हो !
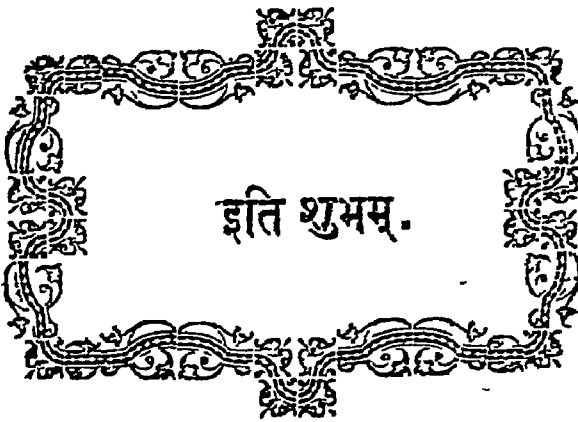
शुद्धिपत्र.

[प्रुफ वांचतां केटलीक भूलो रही गइ छे एम फॉर्म छापवा शरु थइ गया पछी खबर पडतां केटलीक प्रतोमां सुधारो करायो छे परन्तु प्रथम छपाइ चुकेली प्रतोमां भूलो रही गइ छे. माटे अत्रे शुद्धिपत्रक आपवुं योग्य धार्युं छे.]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८	२१	आ वखते किस्तुरचंदजी	आ वखते केवलचंदजी.
९	१९	शिष्य	सहचारी
१६	१६	बंभ	बंभचेर
२१	५	देवगति	मनुष्यगति
२९	३	नहीं हो सकता	सहन नहीं हो सकता
२९	१०	कडा न कम्माग भोख	कडाण कम्मां न मोख
३०	१५	शास्त्र	शास्त्र
५१	२२	'गुप्त मदद इत्यादि' ए शब्दोनी पछी 'वा मो शाह' एटलुं वांचवुं	

५२ टीकामां जे कुंडलिआ छे ते प्रथम वांचवा अने चार लीटी गद्य छे ते पछी वांचवी.

५८	१९	चवाइ	मचाइ

५९ त्रीजी लाइनना छेल्ला शब्द उपर टीका नीचे प्रमाणे समजी लेवी:—

श्री समवायांगजी सूत्रमां ३० अपराधी जनो कह्या छे तेमांना १२ मुख्य अत्रे जणाव्या छे.

९९	१३	आचारांगजी	दशवैकालिकजी
१००	९	केसइ	कस्सइ
१०८	५	कमलदार	कामदार
१११	१५	सत्यको	सत्यका

आ सिवाय 'इस्को' ने बदले 'उस्को अने 'उस्को' ने बदले 'उन्को' कोइ जगाए लखाइ गया छे, जे विद्वान वाचके ज्यहां जोइए तेम सुधारीने वांचवुं.

कोइ कोइ स्थळे अनुस्वार, दीर्घ उ अने रेफ छापवामां बराबर न उघडया होय ए अने एवीबीजी नजीवी भूलो सुज्ञ वाचक दरगुजर करशे एवी आशा छे.

आ पुस्तकमां अंग्रेजी फकराओ अने दृष्टांतो मुनीश्रीनी परवानगीथी म्हें उमेरेला छे तेमज घणी जगाए फारफेर करेला छे, जेथी पुस्तकनी खामीओ माटे तेओश्रीने दोषीत न गणवा विद्वानो प्रत्ये प्रार्थना छे.

वा. मो. शाह.

इनाम !

सनातन जैन धर्मका पुनरोद्धार करनेवाला महात्माश्री लोंकाशाका जन्मचरित्र तैयार करनेकी बहुत जरुरत है. इस लिये सर्व मुनीराजों को प्रार्थना की जाती है कि लोंकाशाका जन्म–गृहस्थाश्रम और संयम और धर्मका फैलावके लिये किये हुए प्रयत्नोंके बारेमें जीतनी बन सके इतनी हकीकत इकट्ठी करके "जैनहितेच्छु" ऑफिसको भेज देगें तो सकल सनातन जैन वर्गपे भारी उपकार होगा. उन्की रची हुइ समाचारी इत्यादि की प्रत मील सके तो वो भी भेजना.

कोइ गृहस्थ इस तराहकी माहेती प्राप्त करनेके कार्यमें स्हायभूत होगा उस्को उस्की तकलीफ देख कर इनाम दीया जायगा. पटावलीकी प्रत भी चहीती है.

ली०

अहमदाबाद. (गुजरात.) } श्री स्था० जैनज्ञानप्रसारक मंडलकी तर्फसे श्री 'जैनहितेच्छु' ऑफिसका

मेनेजर

अमूल्य पुस्तकों.

हिंदी भाषा और शास्त्री टाईपमे.

(१) "सम्यक्त्व सूर्योदय जैन":—पञ्जाबवाला पंडीता श्री पार्वतीजी सतीजी रचीत किमत रु १) ईस पुस्तक पढनेसे ईश्वर और जड-चेतन पदार्थोंका ज्ञान अच्छी तराहसे होता है

(२) "धर्मतत्व संग्रह"—मुनी श्री अमोलख ऋषि कृत किमत रु १) दशविधि धर्मका विस्तारपूर्वक विवेचन इस पुस्तकमें कीया गया है आत्माका उद्धार के लिये उमदा चावीयों (Keys) भी बताई है

(३) नित्य स्मरण—सामायिक, अणूपूर्वि, साधवंदणा और स्तवनों सहित ०-०-६

शास्त्री टाइप और गुजराती भाषामें.

(१) १८५७० वर्षनु जैन पंचांग, श्रावक रायचंद्र कृत किमत रु १) जैन सूत्रोंके आधारसें यह पंचांग बनाया गया है.

(२) "सम्यक्त्व" अथवा "धर्मनो दरवाजो" वा मो शाह कृत किमत ०—६—०, १० प्रतके रु २॥ सम्यक्त्व और मिथ्यात्वका सविस्तर कथन इस पुस्तकमें है, जिसको पढनेसे देव—गुरु—धर्म और तत्वज्ञानका बहुत अच्छा जाणपणा होता हैं मुर्त्तिपूजाके बारेमें भी खुलासा किया गया है नय, निक्षेप आदि बहुत ही बातो इस पुस्तकमें लीखी है

(३) "श्रावकनी आलोयणा"—किमत ०—३—० तदन शुद्ध, पर्युषण पर्वमें अवश्य पढने योग्य

गुजराती भाषा और गुजराती टाइपमें.

☞ नीचे लिखे हुए पुस्तकों बहुत उत्तम हैं यदि कोइ स्वधर्मनीष्ठ बंधु उन्मेसे किसी पुस्तकको शास्त्रीमें छपानेके कार्यमें उत्तेजन देगा तो शास्त्रीमें भी छाप देगें.

१ हित शिक्षाः—इस पुस्तकमें जीवदया, धर्म और नीतिका उपदेश बहुत अच्छी तराहसे किया है. श्रीमंत गायकवाड सरकारने अपने राज्यकी शालाओमे इनाम तरीके बांटनेका और पुस्तकशाळाओमें रखनेका ठहराव किया है १२ मासमें १२००० प्रत गुजरातीमें छपवाकर बाट दी हैं सब धर्मोंके पडीत लोग उस्की प्रशंसा कर रहे हैं. किमत १ प्रतका ०—४—०, १० प्रतका १—८—०; ५०० प्रतके रु ५०.

२ "सती दमयंती अने तेंनी वातमांथी लेवानी शिखामणो"—खुद अंग्रेजी राज्यका और गायकवाडी राज्यका केलवणी खाताने इस पुस्तकको इनाम और लाइब्रेरीके लियें मंजुर कीया है जर्मन कारीगरके हाथसे बनाया हुआ दमयंतीका सुंदर फोटोग्राफ भी इस्में है वार्त्ता बहुत रसीली और शिखामणसे भरपूर है. किमत ०—६—० पक्का पुंठाका ०—८—०

३ बार व्रत—व्रत अंगिकार करनेसे क्या फायदा होता है, कीसी तराहसे अंगिकार करना, व्रतका रक्षणके लिये चावीओं (Keys), इत्यादिकका बहुत अच्छा खुलासा किंया गया है. गुजरातीमे इस्की ७०००प्रत छप गइ हैं. किमत ०)= १०० प्रत के रु. ८

४ प्राणी हिंसा तथा प्राणीखोराक निषेधकः—इस पुस्तकमें हिंदु—मुसलमान—पारसी—ख्रीस्ती सब धर्मोंके धर्मशास्त्रोंके वचनसे साबीत किया गया है कि मास नाहि खाना, किसी प्राणीको नहीं सताना और मद्यपान नहीं करना. विद्वानो, डाक्टरों, और शास्त्रकारोके अभिप्राय भी लीखे हैं इस पुस्तकको पढनेसे बहुत ही हिंसक लोगोने हिंसा छोड दी है किमत ०—६—०, १०० प्रतके रु. २५

(५) "सदुपदेशमाळा"—सत्य, शीयळ, तप इत्यादि १४ नीतिके विषयपे १४ उत्तम रसीली कथाओं किमत रु. ०—८—० स्त्री—पुत्रादिको नीति पढानेका उत्तम साधन यह पुस्तक है. पढ कर खात्री कर लो